श्रीचक्र रहस्य

ॐ ह्रीँ

श्री-चक्र

रहस्य

मानद सम्पादक

'कुल-भूषण' पण्डित रमादत्त शुक्ल, एम० ए०

सम्पादक

ऋतशील शर्मा, एम० ए०

चौखम्भा विश्वभारती
प्रकाशक एवं पुस्तक विक्रेता
पोस्ट बाक्स नं० १०८४
चौक (चित्रा सिनेमा के सामने)
वाराणसी-२२१००१

प्रथम संस्करण : : आषाढ़ पूर्णिमा २०४२ वि० : : जुलाई ८५

प्रकाशक
शाक्त-साधना-पीठ
अलोपीबाग मार्ग, प्रयाग—६

प्राप्ति-स्थान
शाक्त-साधना-पीठ
कल्याण मन्दिर (धार्मिक पुस्तकों के प्रकाशक-विक्रेता)
अलोपीबाग मार्ग, प्रयाग—६

मूल्य १५-०० रु०

मुद्रक
परा वाणी प्रेस
अलोपीबाग मार्ग, प्रयाग—६

अ नु क्र म णि का

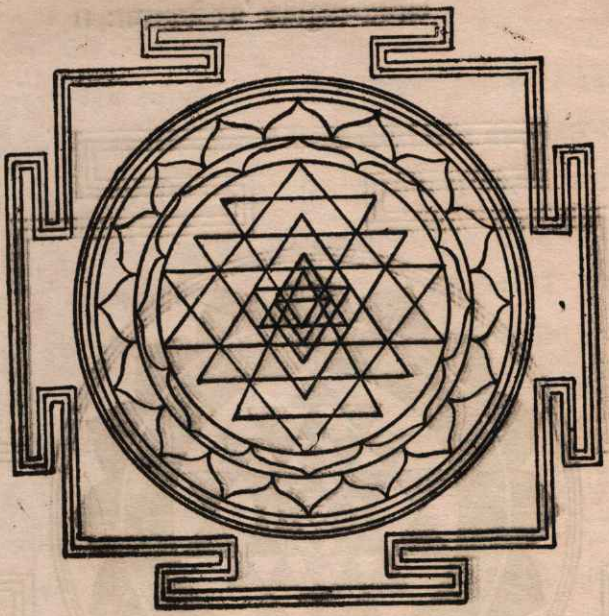

१ दो शब्द		(पांच)
२ श्री-चक्र के चक्रों का संक्षिप्त वर्णन		(नौ)
३ श्री-चक्र का परिचय	....	१
४ श्री-चक्र का साधना-क्रम	...	२६
५ श्री-चक्र और दश-महाविद्यायें	...	४३
६ श्री-चक्र में भगवती दुर्गा	...	४४
७ श्री-चक्र का लेखन-विधान	...	४५
८ श्री-चक्र का लेखन या उत्कीर्णन	...	५०
९ श्री-चक्र का अवतरण (विश्व-सृष्टि का रहस्य)	....	५३

श्रीचक्रम्

विन्दु-त्रिकोण-वसुकोण-दशारयुग्मम्,
मन्वस्र-नागदल-संयुत-षोडशारम् ।
वृत्त-त्रयं च धरणी - सदन - त्रयं च,
श्रीचक्रमेतदुदितं 'पर-देवतायाः ।।

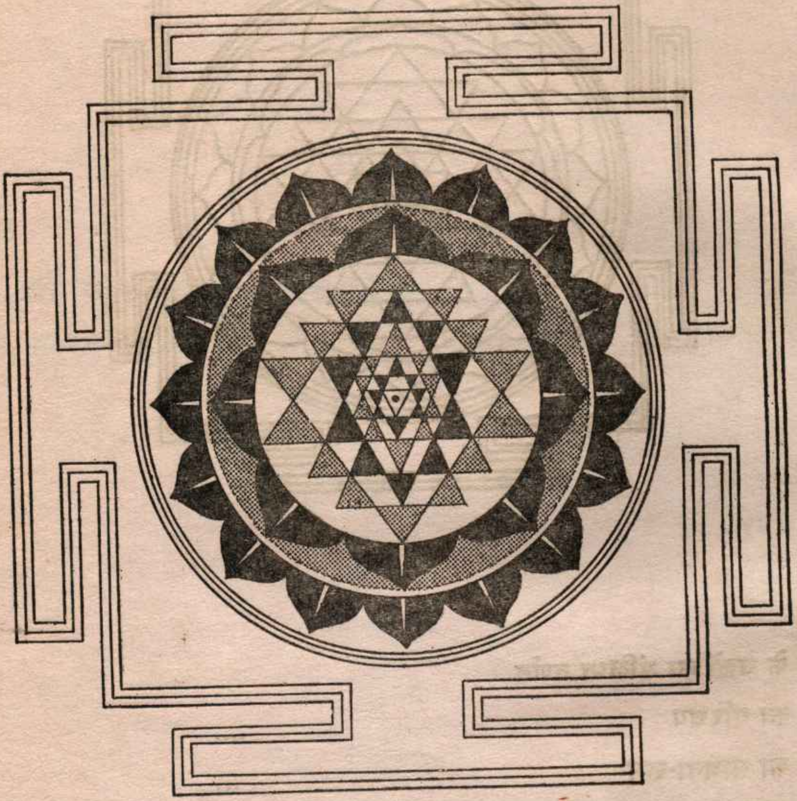

कोटि-लिङ्ग-प्रतिष्ठायां यत्फलं समुदाहृतम् ।
तत्फलं लभते नूनं श्री - चक्रस्य प्रपूजने ।।
सर्व - देव - गणास्तत्र सर्वे धर्माश्च तत्र वै ।
गङ्गाद्याः सरितः सर्वाः पुष्कराद्या जलाशयाः ।।
पुरुषोत्तम - मुख्याश्च क्षेत्रानन्दा वनादयः ।
वाजिमेधस्य यज्ञस्य पुण्यं त्वविकलं भवेत् ।।

दो शब्द

'कौल-कल्पतरु' पण्डित देवीदत्त शुक्ल जी के उपदेशों के अनुसार देवता के साक्षात्कार के लिए, उससे सम्पर्क बनाने के लिए प्रारम्भ में किसी-न-किसी आधार को ग्रहण करना आवश्यक होता है। अपने इष्ट-देवता के ध्यानानुरूप 'प्रतिमा', 'चित्र' और 'पूजा-यन्त्र' ही ये आधार हैं। 'प्रतिमा' स्थूलतम प्रतीक है, जिससे देवता के अङ्ग-प्रत्यङ्ग और पूरे स्वरूप को हृदय में सहज ही प्रतिष्ठित किया जा सकता है किन्तु वैसी प्रतिमा को सर्व-साधारण व्यक्ति प्राप्त नहीं कर सकते। 'चित्र' प्रतिमा की अपेक्षा कम स्थूल होता है, किन्तु उससे देवता के ध्यान को हृदयङ्गम करने में पर्याप्त सहायता मिलती है और वह सर्व-सुलभ भी है। पूजा-यन्त्र इन दोनों की अपेक्षा सूक्ष्म प्रतीक है, किन्तु साधना-मार्ग में अग्रसर व्यक्ति के लिए वह उत्तम सिद्ध होता है क्योंकि स्थूल स्वरूप से देवता के अति सूक्ष्म तेजोमय स्वरूप की अनुभूति किसी-किसी को ही हो पाती है। सूक्ष्म स्वरूप को सूक्ष्म माध्यम से उद्घाटित करने के प्रयास में 'मन' की सारी शक्ति लग जाती है और वह सहज ही अन्तर्मुखी हो जाता है। फिर किसी भी बाह्य साधन की आवश्यकता नहीं रह जाती। यही कारण है कि पूज्य शुक्ल जी ताम्रादि धातु-पत्रों पर उत्कीर्ण पूजा-यन्त्रों के पक्ष में नहीं थे। वे यही सलाह देते थे कि 'अपने इष्ट-देवता के पूजा-यन्त्र को अपने हाथ से अङ्कित करो और पूजा करने के बाद उसका विसर्जन कर दो। धातु पर बने 'यन्त्र' को सुरक्षित रखने के नियमों से भी इस प्रकार साधक बच जाता है। अस्तु।

ऋषियों द्वारा विविध देवताओं के पूजा-यन्त्रों के अलग-अलग स्वरूप निर्दिष्ट किए गये हैं। उनमें से भगवती श्री ललिता त्रिपुर-सुन्दरी या **'श्रीविद्या'** के पूजा-यन्त्र की विशेष ख्याति है क्योंकि एक तो जगद्गुरु श्री शङ्कराचार्य द्वारा इसकी प्रतिष्ठा अपने सभी पीठों में की गई है और दूसरे इस पूजा-यन्त्र का स्वरूप ही विलक्षण है। यह पूजा-यन्त्र **'श्री-यन्त्र'** या **'श्री-चक्र'** के नामों से प्रसिद्ध है। इसमें सभी देवताओं का पूजन किया जा सकता है। इसी से इसे **'यन्त्र-राज'** या **'चक्र-राज'** भी कहते हैं।

'श्री-चक्र' के जटिल स्वरूप और उसमें अन्तर्निहित विस्तृत दार्शनिक तत्वों के प्रति बड़े-बड़े भौतिक वैज्ञानिक भी चकित रह गए हैं और उन्होंने स्वीकार किया है कि इस प्रकार का ज्यामितीय रेखा-चित्र अनूठा है, जो सृष्टि के सूक्ष्म से सूक्ष्म दार्शनिक रहस्यों का उद्घाटन करता है। विश्व के किसी भी अन्य क्षेत्र में इस प्रकार का गूढ़ार्थ-व्यञ्जक प्रतीक देखने में नहीं आया है। **'श्री-चक्र'** को अत्यधिक लोक-प्रियता का एक कारण उसकी यह अभूतपूर्वता भी है।

पूजा-यन्त्रों के विभिन्न अङ्ग कितने सूक्ष्म उद्बोधक हैं, इसे हृदयङ्गम करने के लिए उनका संक्षिप्त विवरण ही पर्याप्त है। यथा—

(१) **विन्दु** : चक्र (यन्त्र) का मध्यस्थ केन्द्र-विन्दु 'परा-शक्ति' का द्योतक है, जिससे बाहर की ओर नाना प्रकार की शक्तियाँ विकसित होती हैं और अन्त में संकुचित होकर उसी में लय हो जाती हैं। यह **'विन्दु'** सूचक है **'पूर्ण'** का, जो सर्व-व्यापक है।

'गणित-विज्ञान' की दृष्टि से **'विन्दु'** वह है, जो लम्बाई-चौड़ाई-मोटाई से रहित है। न उसे घटाया जा सकता है, न बढ़ाया। 'प्रकृति-विज्ञान' (कॉस्मॉलॉजी—विश्व-विज्ञान) के अनुसार **'विन्दु'** विश्व का बीज है, जिससे सृष्टि की उत्पत्ति होती है और उसी में सृष्टि का लय होता है। अध्यात्म या 'मनो-विज्ञान' (मेटाफिजिक्स) **'विन्दु'** को गत्यात्मक एवं स्थित्यात्मक वैश्विक तत्वों की एकात्मक दशा के रूप में प्रतिपादित करता है। शरीर या 'प्राण-विज्ञान' (फिजियोलॉजी) के अनुसार **'विन्दु'** वीर्य है, जो जीव को जन्म देता है। 'साधना' की दृष्टि से **'विन्दु'** चित्-शक्ति की आध्यात्मिक धुरी है, जो मेरु-दण्ड के मूल में, हृत्-पिण्ड के मध्य में या ब्रह्म-रन्ध्र में अवस्थित है।

(२) **त्रिकोण** : 'परा-शक्ति' के प्रथम विकास का सूचक **'त्रिकोण'** है क्योंकि आकाश (शून्य) को तीन से कम रेखाओं द्वारा घेरा नहीं जा सकता। इसी से इसे प्रकृति का 'मूल त्रिकोण' माना गया है। जिस त्रिकोण का शीर्ष नीचे की ओर होता है, उसे शक्ति-त्रिकोण कहते हैं और जिसका शीर्ष ऊपर होता है, वह शिव-त्रिकोण कहलाता है। जिस प्रकार 'विन्दु' 'परा-शक्ति' का द्योतक है, उसी प्रकार 'त्रिकोण' उसकी प्रजनन-शील योनि का व्यञ्जक है।

(३) **वृत्त** : 'परा-शक्ति' के चक्रात्मक एवं लय-बद्ध संकुचन एवं प्रसरण के द्वारा जो असीम सृजन-प्रक्रिया होती है, उसका बोध 'वृत्त' से होता है, जो अपनी परिधि के प्रत्येक विन्दु से केन्द्रस्थ 'विन्दु' की ओर इङ्गित करता दृष्टिगत होता है।

(४) **पद्म-दल** : 'चक्र' (यन्त्र) में विद्यमान पद्म या कमल के 'दल' (पंखुड़ी) सदैव परिधि की ओर इङ्गित करते दिखाई देते हैं। इससे विश्व-जननी की विकसन-शील अपूर्व शक्ति का बोध होता है। पद्म जल में रहते हुए भी भीगता नहीं, इसके कीचड़ में सनता नहीं, उल्टे अपने सौन्दर्य और सुगन्ध से सारे विश्व को आनन्दित करता है। अतः 'चक्रस्थ' पद्म साधक को संसार के आकर्षणों एवं प्रलोभनों से बचकर आत्मोत्कर्ष को प्राप्त करने की प्रेरणा देता है।

(५) **चतुष्कोण** : इसके चार कोने पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण दिशाओं के सूचक हैं और इस प्रकार 'चतुरस्र' आकाश (शून्य) की उस समग्रता का बोध कराता है, जो समस्त सृष्टि का आधार है और साथ ही 'चक्र' (यन्त्र) का भी आधार-भूत है।

संक्षेप में **'चक्र'** (यन्त्र) की रेखाओं और उनसे निर्मित विविध आकारों से 'परा-शक्ति' द्वारा प्रस्फुटित अनेकानेक चित्-शक्तियों की व्यञ्जना होती है, जिनका ज्ञान विविध मन्त्र-बीजों और उनके अधिष्ठातृ देवताओं के चिन्तन-मनन से होता है।

भौतिक विज्ञान-वादी सृष्टि के मूल में 'अणु' को देखते हैं और योगी ऋषियों ने सृष्टि के प्रत्येक स्वरूप में किसी-न-किसी विशिष्ट शक्ति-रूप के दर्शन किए हैं। उस शक्ति के **'आकृति-रूप यन्त्र'** से सृष्टि के छिपे हुए आंशिक या सम्पूर्ण स्वरूप का बोध होता है। इस 'यन्त्र' की विधिपूर्वक उपासना करने से यह वैश्विक तत्वों को व्यक्त करने लगता है, जिनसे चित्-शक्ति के विकास का ज्ञान होता है। फलतः 'यन्त्र' या 'चक्र' के उपासक को अनेक प्रकार की मानसिक शक्तियाँ प्राप्त होती हैं और वह विविध वैश्विक गतिविधियों को नियन्त्रित करने में सक्षम हो जाता है। यही 'चक्र' (यन्त्र) का **'क्रिया-रूप'** है। उपासना और अभिमन्त्रण के लगातार अभ्यास से 'यन्त्र' साक्षात् **'शक्ति-रूप'** में परिणत होता है और वह पूर्ण आनन्द-दायक बन जाता है, जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। इस प्रकार 'चक्र' (यन्त्र) केवल निष्क्रिय स्वरूप मात्र नहीं हैं, उनकी अपनी शक्ति होती है, जिसका अनुभव वही करते हैं, जो उनकी विधिवत् उपासना करते हैं। यह समझना भारी भ्रम है कि 'चक्र' (यन्त्र) की कल्पना मात्र मनुष्य के मस्तिष्क की उपज है। वास्तव में इनका दर्शन महान् ऋषियों को युगों की तपस्या के फल-स्वरूप हुआ है और ये वास्तव में 'परा-शक्ति' के ही विविध साक्षात् रूप हैं। इसी से भारतीय साधक-परम्परा 'मन्त्र, यन्त्र, देवता' को एक-रूप मानती आई है।

कभी-कभी **'चक्र'** या **'यन्त्र'** के विशिष्ट स्थानों में मन्त्राक्षर या वीज-मन्त्र लिखे रहते हैं। और यदि वे नहीं भी लिखे हों, तो भी 'यन्त्र' का प्रत्येक अङ्ग किसी-न-किसी मन्त्र से सम्बद्ध होता है। वस्तुतः 'यन्त्र' और 'मन्त्र' एक दूसरे से अभिन्न हैं। दूसरे शब्दों में इस तथ्य को इस प्रकार समझा जा सकता है कि 'मन्त्र' शब्द-ब्रह्म से स्फुरित हुए हैं और उनके द्वारा निर्दिष्ट रूप का आविर्भाव होता है, जो चित्-युक्त होकर सक्रिय होता है। अपनी ध्वनि द्वारा 'मन्त्र' देवता के सूक्ष्म स्वरूप या चिच्छक्ति के उस स्वरूप को, जो 'यन्त्र' द्वारा प्रस्तुत होता है, व्यक्त करता है। 'मन्त्र' की ध्वनियाँ उसी 'नाद' की प्रसारित शक्तियाँ हैं, जो सृष्टि का कारण है। इस प्रकार सारा विश्व ही विभिन्न 'मन्त्र'-रूपों में अभिव्यक्त होता है।

रूप ही अपनी सूक्ष्म अभिव्यक्ति में ध्वनि (मन्त्र) है और उससे स्थूल अभिव्यक्ति में यन्त्र (चक्र) है। दोनों वास्तव में एक ही तत्व है। बाह्य रूप में 'यन्त्र' और मन्त्र भिन्न अवश्य प्रतीत होते हैं किन्तु वास्तव में वे एक दूसरे के पूरक हैं। कोई भी 'यन्त्र' विश्लेषण करने पर किसी 'मन्त्र' के रूप में अनुभव किया जा सकता है और इसी प्रकार कोई भी 'मन्त्र' निर्दिष्ट 'यन्त्र' के रूप में देखा जा सकता है। इस तथ्य की पुष्टि इस वैज्ञानिक निष्कर्ष से भी होती है कि प्रत्येक ध्वनि एक प्रकार की ज्यामितीय आकृति का निर्माण करती है। ध्वनि-मापक यन्त्रों (मशीनों) के माध्यम से इस निष्कर्ष को आज सहज ही दृष्टिगत किया जा सकता है।

'श्रीचक्र' या 'श्रीयन्त्र' से सम्बन्धित विशेष ज्ञातव्य बातों का वर्णन आगे के पृष्ठों में किया गया है किन्तु परा-शक्ति के प्रतीक **'श्री-चक्र'** का रहस्य विधिवत् उपासना करने से ही समझा जा सकता है। इसके लिए दीक्षा-संस्कार से शुद्ध होकर सविधि मन्त्र का पुरश्चरण करते हुए गुरुदेव से अभिषिक्त होना

पड़ता है। तब नियमित रूप से **'श्री-चक्र'** के आवरण-देवताओं का मन्त्रात्मक पूजन-तर्पण करने का अधिकार मिलता है और उसे करने से **'श्री-चक्र'** की महिमा का वास्तविक ज्ञान होता है। प्रस्तुत प्रकाशन से इस दिशा में अग्रसर होनेवाले साधकों को यदि किञ्चित् भी सहायता मिली, तो हम अपने इस प्रयास को सार्थक समझेंगे।

—'कुल-भूषण'

गुरु-पूर्णिमा, २०४२

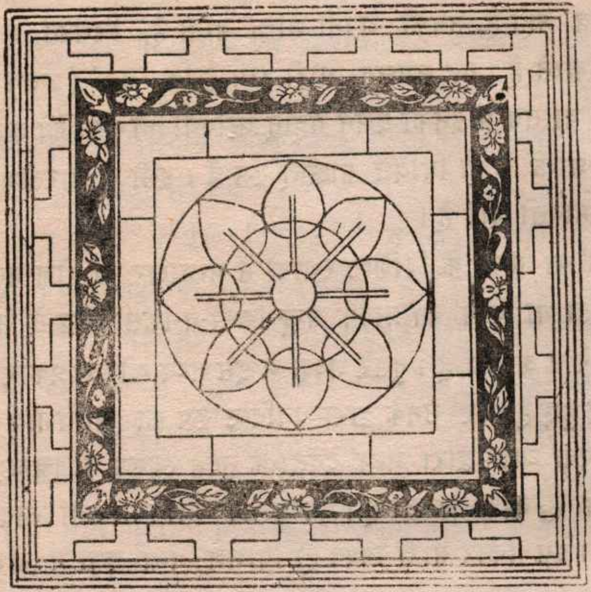

श्री-चक्र

के

चक्रों का संक्षिप्त वर्णन

(१)

महा-विन्दु

१ आकार	रक्त-विन्दु के भीतर गुप्त श्वेत विन्दु
२ रङ्ग	श्वेत
३ खण्ड	निर्गुण
४ चक्र (सृष्टि-स्थिति-संहार)	समष्टि
५ वर्णाक्षर	'क्ष' और 'म' का समष्टि रूप
६ चक्रस्थ मूल-शक्ति	परा-शक्ति
७ चक्रेश्वरी	प्रकाश-विमर्श-रूपिणी परा भट्टारिका
८ शरीर-स्थान	ब्रह्म-रन्ध्र
९ शरीर-चक्र	सहस्र-दल-कमल
१० शरीर-अवस्था	तुरीयातीता

२ विन्दु

(सर्वानन्द-मय चक्र)

१ आकार	विन्दु
२ रङ्ग	रक्त
३ चक्र (सृष्टि-स्थिति-संहार)	सृष्टि-चक्र
४ वर्णाक्षर	'क्ष' वर्ण मूल प्रकृति
५ चक्रस्थ मूल-शक्ति	ललिताम्बा
६ चक्रेश्वरो	श्रीललिता महा-चक्रेश्वरी
७ योगिनी-चक्र	परापर रहस्य-योगिनी चक्र
८ मुद्रा	योनि-मुद्रा
९ देहस्थ अवयव	श्रद्धा
१० शरीर-स्थान	भ्रू-मध्य
११ शरीर-चक्र	आज्ञा-चक्र (द्वि-दल)
१२ शरीर-अवस्था	तुरीया—महा-कारण

३ त्रिकोण

(सर्व-सिद्धि-प्रद चक्र)

१ आकार	त्रिकोण
२ रङ्ग	पीत
३ खण्ड	अग्नि-खण्ड
४ चक्र (सृष्टि-स्थिति-संहार)	सृष्टि-चक्र
५ वर्णाक्षर	'म' वर्ण
६ चक्रस्थ मूल-शक्तियाँ	१ कामेश्वरी, २ वज्रेश्वरी, ३ भग-मालिनी
७ मूल-शक्ति के आयुधादि	वाण-धनुष-पाश-अंकुश
८ चक्रेश्वरी	त्रिपुराम्बा
९ योगिनी-चक्र	अति-रहस्य-योगिनी चक्र
१० मुद्रा	बीज-मुद्रा
११ देहस्थ अवयव	अव्यक्त महत्-तत्त्व (महदहङ्कार, पञ्च-तन्मात्राएँ)
१२ शरीर-स्थान	लम्बिका
१३ शरीर-चक्र	इन्द्र-योनि (अष्ट-दल)
१४ शरीर-अवस्था	सुषुप्ति—कारण

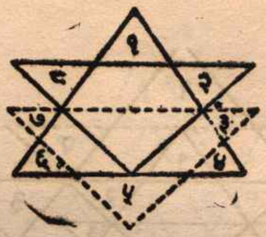

४ अष्ट-कोण

(सर्व-रोग-हर चक्र)

१ आकार	अष्टार
२ रङ्ग	हरा
३ खण्ड	अग्नि-खण्ड
४ चक्र	सृष्टि-चक्र
५ वर्णाक्षर	य र ल व श ष स ह
६ अग्नि-दश-कला	१ धूम्रार्चिषी, २ उष्मा, ३ ज्वलिनी, ४ ज्वालिनी, ५ विस्फुलिङ्गिनी, ६ सुश्री, ७ सुरूपा, ८ कपिला, ९ हव्यवहा, १० कव्यवहा
७ चक्रस्थ मूल-शक्तियाँ	१ वशिनी, २ कामेश्वरी, ३ मोदिनी, ४ विमला, ५ अरुणा, ६ जयिनी, ७ सर्वेश्वरी, ८ कौलिनी
८ चक्रेश्वरी	त्रिपुरा-सिद्धा
९ योगिनी-चक्र	रहस्य-योगिनी चक्र
१० मुद्रा	खेचरी-मुद्रा
११ देहस्थ अवयव	शीत-उष्ण-सुख-दुःख-स्वेच्छा-सत-रज-तम
१२ शरीर-स्थान	कण्ठ
१३ शरीर-चक्र	विशुद्ध चक्र (षोडश-दल, षोडश-स्वर-मय)

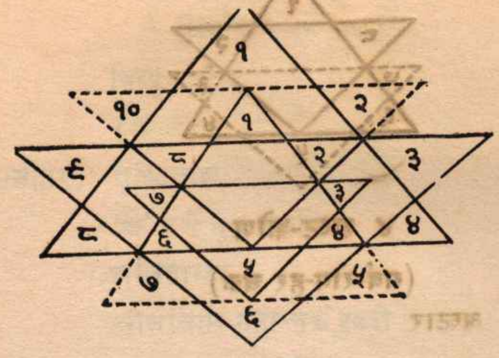

५ अन्तर्दशार

(सर्व-रक्षा-कर चक्र)

१ आकार	भीतर के दश कोण
२ रङ्ग	काला
३ खण्ड	सूर्य-खण्ड
४ चक्र	स्थिति-चक्र
५ वर्णाक्षर	ट ठ ड ढ ण त थ द ध न
६ रुद्र-दश-कला	१ तीक्ष्णा, २ रौद्री, ३ भया, ४ निद्रा, ५ तन्द्रा, ६ क्षुधा, ७ क्रोधा, ८ क्रिया, ९ उद्गारी, १० मृत्यु
७ चक्रस्थ मूल-शक्तियाँ	१ सर्वज्ञा, २ सर्व-शक्ति, ३ सर्वैश्वर्य-प्रदा, ४ सर्व-ज्ञान-मयी, ५ सर्व-व्याधि-विनाशिनी, ६ सर्वाधार-स्वरूपा, ७ सर्व-पाप-हरा, ८ सर्वानन्द-मयी, ९ सर्व-रक्षा-स्वरूपिणी, १० सर्वेप्सित-फल-प्रदा
८ चक्रेश्वरी	त्रिपुर-मालिनी
९ योगिनी-चक्र	निगर्भ-योगिनी चक्र
१० मुद्रा	महांकुश-मुद्रा
११ देहस्थ अवयव	रेचक-पूरक-शोषक-दाहक-प्लावक-क्षारक-दारक-क्षोभक-मोहक-जृम्भक
१२ शरीर-स्थान	हृदय
१३ शरीर-चक्र	अनाहत (द्वादश-दल, 'क' से 'ठ' द्वादश-व्यञ्जन-मय)

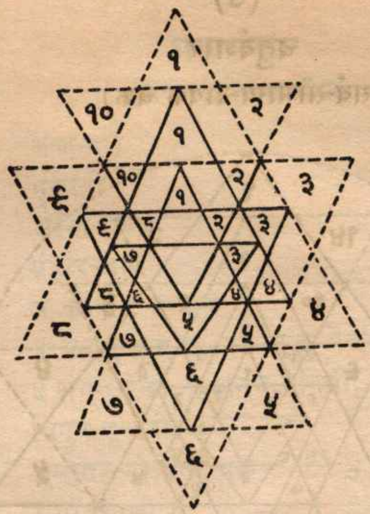

६ बहिर्दशार
(सर्वार्थ-साधक चक्र)

१ आकार	बाहर के दश कोण
२ रङ्ग	लाल
३ खण्ड	सूर्य-खण्ड
४ चक्र	स्थिति-चक्र
५ वर्णाक्षर	प, फ, ब, भ तथा क, ख, ग, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ
६ विष्णु की कलायें	१ जरा, २ पालिनी, ३ शान्ति, ४ ईश्वरी, ५ रति, ६ कामिका, ७ वरदा, ८ ह्लादिनी, ९ प्रीता १० दीर्घा।
७ सूर्य की कलायें	१ तपिनी, २ तापिनी, ३ धूम्रा, ४ मरीची, ५ ज्वालिनी, ६ रुचि, ७ सुषुम्ना, ८ भोगदा, ९ विश्वा १० बोधिनी, ११ धारिणी, १२ क्षमा।
८ चक्रस्थ मूल-शक्तियाँ	१ सर्व-सिद्धि-प्रदा, २ सर्व-सम्पत्-प्रदा, ३ सर्व-प्रियंकरी, ४ सर्व-मङ्गल-कारिणी, ५ सर्व-काम-प्रदा, ६ सर्व-दुःख-विमोचिनी, ७ सर्व-मृत्यु-प्रशमनी, ८ सर्व-विघ्न-निवारिणी, ९ सर्वाङ्ग-सुन्दरी, १० सर्व-सौभाग्य-दायिनी।
९ चक्रेश्वरी	त्रिपुराश्री
१० योगिनी-चक्र	कुलोत्तीर्ण-योगिनी चक्र
११ मुद्रा	उन्मादिनी मुद्रा
१२ देहस्थ अवयव	प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकर, देव-दत्त, धनञ्जय।
१३ शरीर-स्थान व चक्र	नाभि, मणिपुर-चक्र (दश-दल, 'ड' से 'फ' दश-व्यञ्जन-मय)

चतुर्दशार
(सर्व-सौभाग्य-दायक चक्र)

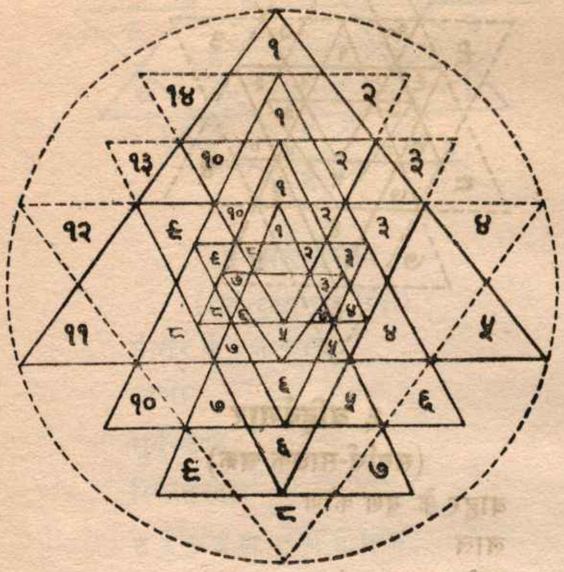

१ आकार	चौदह कोण
२ रङ्ग	नीला
३ खण्ड	चन्द्र-खण्ड
४ चक्र	स्थिति-चक्र
५ वर्णाक्षर	स्वर-मय
६ ब्रह्मा की कलायें	१ सृष्टि, २ ऋद्धि, ३ स्मृति, ४ मेधा, ५ कान्ति, ६ लक्ष्मी, ७ द्युति, ८ स्थिरा, ९ स्थिति, १० सिद्धि
७ चक्रस्थ मूल-शक्तियाँ	१ सर्व-संक्षोभिणी, २ सर्व-विद्राविणी, ३ सर्वाकर्षिणी, ४ सर्वाह्लादिनी, ५ सर्व-सम्मोहिनी, ६ सर्व-स्तम्भिनी, ७ सर्व-जृम्भिणी, ८ सर्व-वशङ्करी, ९ सर्व-रञ्जिनी, १० सर्वोन्मादिनी, ११ सर्वार्थ-साधिनी, १२ सर्व-सम्पत्ति-पूरिणी, १३ सर्व-मन्त्र-मयी, १४ सर्व-द्वन्द्व-करी।
८ चक्रेश्वरी	त्रिपुर-वासिनी
९ योगिनी-चक्र	सम्प्रदाय-योगिनी चक्र
१० मुद्रा	सर्व-वशङ्करी मुद्रा
११ देहस्थ अवयव	अलम्बुषा, कुहू, विश्वोदरी, वरुणा, हस्ति-जिह्वा, यशस्वती, अश्विनी, गांधारी, पूषा, शङ्खिनी, सरस्वती, इडा, पिङ्गला, सुषुम्ना।
१२ शरीर-स्थान व चक्र	वस्ति, स्वाधिष्ठान (षड्-दल, 'ब' से 'ल' छः-व्यञ्जन-मय)

(८)

अष्ट-दल
(सर्व-संक्षोभण चक्र)

१ आकार	अष्ट-दल
२ रङ्ग	गुलाबी
३ खण्ड	अग्नि-खण्ड
४ चक्र	संहार-चक्र
५ वर्णाक्षर	अ क च ट त प य श
६ चक्रस्थ मूल-शक्तियाँ	१ अनङ्ग-कुसुमा, २ अनङ्ग-मेखला, ३ अनङ्ग-मदना, ४ अनंग-मदनातुरा ५ अनंग-रेखा, ६ अनंग-वेगिनी, ७ अनङ्गांकुशा, ८ अनंग-मालिनो।
७ चक्रेश्वरी	त्रिपुर-सुन्दरी
८ योगिनी-चक्र	गुप्ततर-योगिनी चक्र
९ मुद्रा	सर्वाकर्षिणी
१० देहस्थ-अवयव	वचन, आदान, गमन, विसर्ग, आनन्द, हानि, उपेक्षा, बुद्धि
११ शरीर-स्थान व चक्र	गुदा, मूलाधार (चतुर्दल, 'व' से 'स' चार-व्यञ्जन-मय)

(९)

षोडश-दल
(सर्वाशा-परिपूरक चक्र)

१ आकार	षोडश-दल
२ रंग	पीत
३ खण्ड	चन्द्र-खण्ड
४ चक्र	संहार-चक्र
५ वर्णाक्षर	स्वर-मय
६ सदाशिव की १६ कलायें	१ निवृत्ति, २ प्रतिष्ठा, ३ विद्या, ४ शान्ति, ५ इंधिका, ६ दीपिका, ७ रेचिका, ८ मोचिका, ९ परा, १० सूक्ष्मा, ११ सूक्ष्मामृता, १२ ज्ञाना, १३ ज्ञानामृता, १४ आप्यायिनी, १५ व्यापिनी, १६ व्योम-रूपा।
७ चन्द्र की १६ कलायें	१ अमृता, २ मानदा, ३ पूषा, ४ तुष्टि, ५ पुष्टि ६ रति, ७ धृति, ८ शशिनी, ९ चन्द्रिका, १० कांति, ११ ज्योत्स्ना, १२ श्री, १३ प्रीति, १४ अंगदा, १५ पूर्णा, १६ पूर्णामृता।
८ षोडश नित्यायें	१ कामेश्वरी, २ भग-मालिनी, ३ नित्यक्लिन्ना, ४ भेरुण्डा, ५ वह्नि-वासिनी, ६ महा-वज्रेश्वरी, ७ शिवदूती, ८ त्वरिता, ९ कुल-सुन्दरी १० नित्या, ११ नील-पताका, १२ विजया, १३ सर्व-मंगला, १४ ज्वाला-मालिनी, १५ चित्रा, १६ ललिता महानित्या।

९ चक्रस्थ मूल-शक्तियाँ	१ कामाकर्षिणी, २ बुद्ध्याकर्षिणी, ३ अहंकाराकर्षिणी, ४ शब्दाकर्षिणी, ५ स्पर्शाकर्षिणी, ६ रूपाकर्षिणी, ७ रसाकर्षिणी, ८ गंधाकर्षिणी, ९ चित्ताकर्षिणी, १० धैर्याकर्षिणी, ११ स्मृत्याकर्षिणी, १२ नामाकर्षिणी, १३ बीजाकर्षिणी, १४ आत्माकर्षिणी, १५ अमृताकर्षिणी; १६ शरीराकर्षिणी ।
१० चक्रेश्वरी	त्रिपुरेशी
११ योगिनी-चक्र	गुप्त-योगिनी चक्र
१२ मुद्रा	सर्व-विद्राविणी
१३ देहस्थ अवयव	पञ्च-तत्व, श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, घ्राण, वाक्, हस्त, पाद, पायु, उपस्थ, मन
१४ शरीर-स्थान	गुदा से नीचे का देश
१५ शरीरस्थ चक्र	कुल (षट्-दल, नाद-मय)

१० भूपुर

१ आकार	भूपुर—चतुर्द्वार
२ रङ्ग	हरा
३ चक्र	संहार-चक्र
४ ईश्वर की ४ कलायें	१ पीता, २ श्वेता, ३ अरुणा, ४ असिता
५ दश दिक्पाल	१ इन्द्र, २ अग्नि, ३ यम, ४ निऋत, ५ वरुण, ६ वायु, ७ कुबेर, ८ ईशान, ९ ब्रह्मा, १० अनन्त ।
६ दश सिद्धियाँ	१ अणिमा, २ लघिमा, ३ महिमा, ४ ईशत्व, ५ वशित्व, ६ प्राकाम्य, ७ भुक्ति, ८ इच्छा, ९ प्राप्ति, १० सर्व-काम-सिद्धि
७ अष्ट-शक्तियाँ	१ ब्राह्मी, २ माहेश्वरी, ३ कौमारी, ४ वैष्णवी, ५ वाराही, ६ माहेन्द्री, ७ चामुण्डा, ८ महा-लक्ष्मी ।
८ चक्रस्थ मूल-शक्तियाँ	१ सर्व-संक्षोभिणी, २ सर्व-विद्राविणी, ३ सर्वाकर्षिणी, ४ सर्व-वशंकरी, ५ सर्वोन्मादिनी, ६ महांकुशा, ७ सर्व-खेचरी, ८ सर्व-बीज, ९ सर्व-योनि, १० सर्व-त्रिखण्डा ।
९ चक्रेश्वरी	त्रिपुरा
१० योगिनी-चक्र	प्रगट-योगिनी
११ मुद्रा	सर्व-संक्षोभिणी मुद्रा
१२ देहस्थ-अवयव	नव-रन्ध्र रूपी देही, त्वगादि सप्त धातु, षड्-रस, क्रिया, इच्छा, ज्ञान, शक्ति, अयमात्मा ब्रह्म ।
१३ शरीर-स्थान व चक्र	गुदा से नितान्त अधः-देश, अकुल (सहस्र-दल कमल)

श्री-चक्र

का

परिचय

१ 'श्री-चक्र' की श्रुति (वेदों) द्वारा पुष्टि

शाक्त-मत के अनुभवी विद्वानों और सिद्ध महा-पुरुषों के अनुसार श्री महा-त्रिपुर-सुन्दरी के नव-योन्यात्मक 'श्री-चक्र'—कामराज-विद्या-स्वरूप 'श्री-यन्त्र' की ब्रह्म-रूप से उपासना करने पर मुक्ति मिलती है।

'श्री-चक्र' की पुष्टि श्रुति द्वारा हुई है। यह कहा जा सकता है कि दर्शनार्थक धातु-घटित श्रुति के आधार पर ही 'श्री-चक्र' की रचना हुई है, क्योंकि इसके अनुसार—

यदापश्यः पश्यते रुक्म-वर्णं कर्त्तारमीशं पुरुषं ब्रह्म-योनिं।
तदा विद्वान् पुण्य-पापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति ।।

इस मन्त्र के 'ब्रह्म-योनि' पद से योनि का ब्रह्मत्व स्पष्ट रूप से बताया गया है। यहाँ 'योनि' से तात्पर्य नव-योन्यात्मक 'श्री-चक्र' से ही है। 'ईशम्' पद का सन्धि-विच्छेद करने पर 'इ'+'ईशम्' का अर्थ राजा या स्वामी है। इसलिये समस्त पद का अर्थ काम-राज अथवा काम से सेवित होता है। 'कर्त्तारं पुरुषं' इन दो पदों से शिव-शक्ति का सम्मिलन व्यक्त होता है।

यदि कोई केवल 'योनि'-शब्द से ही उसके वेद-विरुद्ध होने में शङ्का करे, तो तैत्तरीयारण्यक श्रुति के आधार पर यह शङ्का निर्मूल सिद्ध की जा सकती है। वह श्रुति यह है—

अष्ट-चक्रा नव-द्वारा देवानां पूरयोध्या।
तस्यां हिरण्यमयः कोशः स्वर्ग-लोको ज्योतिषावृत्तः ।।

इसका अर्थ यह है कि १ अष्ट-कोण, २ दश-कोण, ३ द्वितय, ४ चतुर्दश-कोण, ५ अष्ट-पत्र, ६ षोडश-पत्र, ७ त्रि-विलय, ८ त्रि-रेखा आदि आठ चक्रवाली, ९ त्रिकोण-रूप नौ द्वार-वाली, इन्द्रादिक देवताओं की पूज्या अथवा सोम, सूर्य, अनलात्मक देवताओं की अयोध्या नाम की पुरी है। इसमें हिरण्य-मय कोष अर्थात् सहस्र-दल का कमल है, जिसकी ज्योति से स्वर्ग-लोक आच्छादित रहता है।

'श्री-चक्र-पुरी' का नाम 'अयोध्या' पड़ने का कारण यह है कि यह पुरी मन्द-भाग्यवाले पुरुष को प्राप्त नहीं होती अथवा 'श्री-चक्र' के सेवकों को कामादिक शत्रु पराजित नहीं कर सकते। इस प्रकार अनेक श्रुतियाँ हैं, जो 'श्री-चक्र' सम्बन्धी अनुष्ठानादिक का समर्थन करती हैं।

उपनिषत् भी 'श्री-चक्र' के अनुष्ठानादिक का समर्थन करते हैं। उदाहरण के लिये कैवल्योपनिषद् का निम्न मन्त्र द्रष्टव्य है—

उमा-सहायं परमेश्वरं प्रभुं त्रि-लोचनं नील-कण्ठं प्रशान्तम्।
ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भूत-योनिं समस्त-साक्षीं तमसः परस्तात्॥

अर्थात् उमा-सहित त्रि-लोचन-लक्षण वाले भूत-योनि-चक्र का अथवा शिव-शक्ति-सम्मिलन-रूप नव-योनि चक्र का, ध्यान-योग से, दर्शन कर मुनि-जन अज्ञान के पार पहुँच जाते हैं।

२ 'श्री-चक्र' का माहात्म्य

तत्व-विज्ञान का अध्ययन करने से प्रतीत होता है कि चिद् तथा गति-प्रवाह मूल में एक-रूप हैं। वह मूल कहाँ है, यह जानना लगभग असम्भव-सा ही है। अनुमान से इतना कहा जा सकता है कि मूल में प्रकृति-पुरुष भिन्न नहीं हैं। एक ही वस्तु के दो भिन्न प्रवाह हैं। एक ही वस्तु की दो भिन्न क्रियायें हैं। जिस प्रकार एक ही अग्नि-तत्व में उष्णता, पृथक्-कारिणी शक्ति, काश आदि भिन्न-भिन्न क्रियायें हैं, उसी प्रकार मूल-चित् में गति तथा चैतन्य—ये दो भिन्न अमोघ शक्तियाँ हैं। उस परमा महा-शक्ति के चैतन्य-भाव को 'शिव' तथा उसके गति-प्रवाह को 'शक्ति' नाम से जाना जाता है। जैसे-जैसे वाह्य-दर्शन के स्थूल अङ्ग के द्रष्टा का भाव अधिक बनने लगता है, वैसे-वैसे ये दो धारायें अधिकाधिक अन्तरवाली दिखती हैं। जैसे-जैसे अन्तः-सूक्ष्म-लक्ष्य में द्रष्टा प्रवेश करता है, वैसे-वैसे ये दोनों धारायें समीप दीखने लगती हैं तथा अन्तर-एकाग्रता के लक्ष्य में दोनों एक हो गई हुई भासती हैं।

महा-शक्ति की इस अमोघ माया-मय लीला का सतत चिन्तन करने से व्यक्ति स्थूल बन्धन से मुक्त हो, उसकी सूक्ष्म क्रिया-दर्शन का भाग्य-शाली होता है।

विश्व-प्रवाह में महा-शक्ति के इसी क्रिया-भाव का दिग्दर्शक 'श्री-चक्र' है। यह सच्चिदानन्द महा-शिव का विश्राम-स्थान है। इसमें महा-शक्ति की गति-शक्ति 'श्री महा-विद्या' का सतत स्फुरण, स्पन्दन होता है।

'श्री-चक्र' में महा-शक्ति के चैतन्य-भाव 'शिव' तथा गति-भाव 'शिवा' का एक साथ मानसाराधन सम्भव है। इसमें 'शिव' अपनी शक्ति 'शिवा' से संयुक्त होकर मिथुन-रूप में उपासित होता है। यही नहीं, भगवान् शङ्कराचार्य के शब्दों में इसमें शिव-शक्ति का पञ्च-विध साम्य—१ अवस्थान-साम्य, २ अधिष्ठान-साम्य, ३ अनुष्ठान-साम्य, ४ रूप-साम्य और ५ नाम-साम्य—देखने का सौभाग्य प्राप्त होता है।

इस प्रकार साधक के लिये 'श्री-चक्र' इष्ट-देव की साक्षात् मूर्ति है। साधक 'श्री-चक्र' के सतत चिन्तन, पूजन द्वारा अपने इष्ट-देव से तादात्म्य प्राप्त कर मोक्ष पा सकता है। 'श्री-चक्र' का पूजन प्रत्येक शक्ति-उपासक के लिये सर्व-श्रेष्ठ साधना है, इसमें सन्देह नहीं।

योगिनी-हृदय का कथन है कि—'जिस समय विश्व-रूपिणी परम-शक्ति स्वेच्छा से अपनी स्फुरत्ता का चिन्तन करती है, उसी समय 'श्री-चक्र' की उत्पत्ति होती है।'

स्पष्ट है कि 'श्री-चक्र' परम-शक्ति के बनाये हुए ब्रह्माण्ड और पिण्डाण्ड दोनों का निरूपण करता है; समष्टि तथा व्यष्टि दोनों का द्योतक है। इसीलिये 'श्री-चक्र' का वर्णन दो प्रकार से है। एक तो सृष्टि-क्रम है, जिसमें विन्दु से आरम्भ करके बाहर की ओर चलते हैं। यहाँ विश्व-रूपिणी परम-शक्ति की स्फुरत्ता का दिग्दर्शन होता है। दूसरा लय-क्रम है, जिसमें बाहर के चक्र से आरम्भ करके अन्दर की ओर चलते हैं। यहाँ 'श्री-चक्र' केवल मन होता है, जो शुद्ध सत्व को प्रधानता लिये हुए है। 'श्री-चक्र' का प्रत्येक चक्र तब मानसिक दशा का निरूपण करता है और चक्र-शक्तियाँ मन की वृत्तियों का। भूपुर से लेकर विन्दु-पर्यन्त नौ चक्र जीव की जाग्रत् से लेकर मोक्ष-पर्यन्त अनेक दशाओं का वर्णन करते हैं, जो स्वयं उसकी बनाई हुई हैं। ये दशायें ही जीव के लिए शुद्ध या अशुद्ध संसार बनाती हैं। अपवित्र मन से बना हुआ अशुद्ध संसार बन्धन में डालता है और शुद्ध संसार सत्व-गुणाधिकता से सम्पन्न मन द्वारा ज्ञान के अभ्यास का निरूपण करता है। यह अभ्यास ही सभी प्रकार के बन्धनों को काटता है। 'श्री-चक्र' की पूजा का यही माहात्म्य है।

३ 'श्री-चक्र' के क्रिया-दैवत

विन्दु-त्रिकोण-वसु-कोण-दशार-युग्मं, मन्वस्र-नाग-दल-संयुत-षोडशारम्।
वृत्त-त्रयं च धरणी-सदन-त्रयं च, श्री-चक्र-राजमुदितं पर-देवतायाः॥

१ विन्दु—पर-व्यापिनी मूल-स्पन्द शक्ति।

विन्दु (सर्वानन्द-मय चक्र—परा-रहस्य योगिनी) : विश्व-नायिका महा-माया श्री त्रिपुर-सुन्दरी तथा उनके अङ्ग-रूप मूल-षोडश प्रवाह (कलायें)—१ कामेश्वरी, २ भग-मालिनी, ३ नित्य-क्लिन्ना, ४ भेरुण्डा, ५ वह्नि-वासिनी, ६ महा-विद्येश्वरी, ७ शिव-दूती, ८ त्वरिता, ९ कुल-सुन्दरी, १० नित्या, ११ नील-पताकिनी, १२ विजया, १३ सर्व-मङ्गला, १४ ज्वाला-मालिनी, १५ विचित्रा, १६ त्रिपुर-सुन्दरी।

२ त्रिकोण—श्री महा-विद्या (इच्छा, ज्ञान, क्रिया)।

त्रिकोण (सर्व-सिद्धि-प्रद चक्र—अति-रहस्य-योगिनी) : अति रहस्य-योगिनी-त्रय—१ कामेश्वरी (रुद्र), २ वज्रेश्वरी (विष्णु), ३ भग-मालिनी (ब्रह्मा)।

३ अष्ट-कोण (वसु-कोण)—अष्ट-पीठ की महा-शक्तियाँ।

अष्ट-कोण (सर्व-रोग-हर-चक्र—रहस्य-योगिनी) : अष्ट-काल-शक्तियाँ—१ वशिनी, २ कौमारी, ३ मोहिनी, ४ विमला, ५ अरुणा, ६ जयिनी, ७ सर्वेशी तथा ८ कौलिनी।

४ अन्तर्दशार—दश-महाविद्यायें।

अन्तर्दशार (सर्व-रक्षाकर चक्र—निगर्भ-योगिनी) : मूल-सत्व-भाव-दर्शिका दश-धात्री-शक्तियाँ—१ सर्वज्ञा, २ सर्व-शक्ति, ३ सर्वैश्वर्य-फल-प्रदा, ४ सर्व-ज्ञानमयी, ५ सर्व-व्याधि-नाशिनी, ६ सर्वाधार-स्वरूपा, ७ सर्व-पाप-हरा, ८ सर्वानन्द-मयी, ९ सर्व-रक्षाकरी, १० सर्वेप्सितार्थ-फलदा।

५ बहिर्दशार—महा-शून्य की दश दिशायें, जिनमें दश-महाविद्याओं की भिन्न-भिन्न क्रिया-शक्तियों का विकास होता है। (इन द्वारों में से, वे शक्तियाँ बाहर की ओर प्रस्सरित होती हैं)।

बहर्दशार (सर्वार्थ-साधक चक्र—कुल-योगिनी) : महा-माया-मयी दश सिद्धियाँ—१ सर्व-सिद्धि-प्रदा, २ सर्व-सम्पत्-प्रदा, ३ सर्व-प्रियङ्करी, ४ सर्व-मङ्गल-कारिणी, ५ सर्व-काम-प्रदा, ६ सर्व-दु:ख-मोचिनी, ७ सर्व-मृत्यु-प्रशमिनी, ८ सर्व-विघ्न-निवारिणी, ९ सर्वाङ्ग-सुन्दरी, १० सर्व-सौभाग्य-प्रदा।

६ चतुर्दश त्रिकोण (मन्वस्र)—चतुर्दश सृष्टि-क्रम। पञ्च-सूक्ष्माकर्षण विन्दु (द्रां, द्रीं, क्लीं, ब्लूं, स:)+पञ्च तन्मात्रा (शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गन्ध)+अन्तश्चतुष्टय (मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार)=१४।

चतुर्दशार (**सर्व-सौभाग्य-प्रद चक्र**—सम्प्रदाय-योगिनी) : मूलाग्नि की ७ लय-कारिणी तथा ७ उन्मादिनी शक्तियाँ—(क) लय-कारिणी—१ सर्व-संक्षोभिणी, २ सर्व-द्राविणी, ३ सर्वाकर्षिणी, ४ सर्वाह्लादकरी, ५ सर्व-सम्मोहिनी, ६ सर्व-स्तम्भिनी, ७ सर्व-जृम्भिणी। (ख) उन्मादिनी—१ सर्व-वशङ्करी, २ सर्व-रञ्जिनी, ३ सर्वोन्मादिनी, ४ सर्वार्थ-साधिनी, ५ सर्व-सम्पत्ति-पूरिणी, ६ सर्व-मन्त्र-मयी, ७ सर्व-द्वन्द्व-क्षयङ्करी।

७ अष्ट-दल—(नाग-दल)—काल-चक्र भैरवी-शक्ति।

अष्ट-दल (सर्व-संक्षोभण चक्र—गुप्ततर योगिनी) : मूल जल-तत्व की ४ मोहिनी तथा ४ आकर्षिणी शक्तियाँ—(क) मोहिनी—१ अनङ्ग-कुसुमा, २ अनङ्ग-मेखला, ३ अनङ्ग-मदना, ४ अनङ्ग-मदनातुरा। (ख) आकर्षिणी—१ अनङ्ग-रेखा, २ अनङ्ग-वेगा, ३ अनङ्गांकुशा, ४ अनङ्ग-मालिनी।

८ षोडश-दल—षोडश कला (सृष्टि का उन्नति-क्रम)।

षोडश-दल (**सर्वाशा-पूरक चक्र—गुप्त-योगिनी**) : मूल वायु-तत्व की वशीकरिणी, स्तम्भिनी, उच्चाटिनी तथा विक्षेपिणी महाशक्तियाँ—(क) वशीकरणी—१ कामाकर्षिणी, २ बुद्ध्याकर्षिणी, ३ अहङ्कारार्किषिणी ४ शब्दाकर्षिणी। (ख) स्तम्भिनी—१ स्पर्शाकर्षिणी, २ रूपाकर्षिणी, ३ रसाकर्षिणी, ४ गन्धाकर्षिणी (ग) उच्चाटिनी—१ चित्ता-कर्षिणी, २ धैर्याकर्षिणी, ३ स्मृत्याकर्षिणी, ४ आत्माकर्षिणी। (घ) विक्षेपिणी—१ शरीराकर्षिणी, २ अमृताकर्षिणी, ३ स्मृत्याकर्षिणी, ४ आत्माकर्षिणी।

९ भूपुर (धरणी-सदन)—अनन्त ब्रह्माण्डात्मक बाह्य सृष्टि।

त्रि-वृत्ति—उत्पत्ति, स्थिति, लयात्मक सृष्टि-क्रम।

चतुर्द्वार—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष।

भूपुर-त्रय (त्रैलोक्य-मोहन चक्र—प्रगट-योगिनी) : बाहर के भूपुर में भू-तत्व-जनित अणिमादि अष्ट-सिद्धियाँ। बीच के भूपुर में अणिमादि अष्ट-सिद्धियों में(लुभानेवाली) कार्य-कर्त्री अष्ट-महाशक्तियाँ—१ ब्राह्मी, २ माहेश्वरी, ३ कौमारी, ४ वैष्णवी, ५ इन्द्राणी, ६ वाराही, ७ चामुण्डा, ८ नारसिंही। अन्दर के भूपुर में ब्राह्मी आदि अष्ट-शक्तियों के क्षोभण, द्रावणादि गुप्तास्त्र हैं।

'श्री-चक्र' में 'विन्दु'—मूल स्पन्द-शक्ति भगवती महा-दुर्गा मां का परम भाव है। 'त्रिकोण' श्री-भाव है। 'वसु-कोण' में श्री का तेज है। 'दशार' में भगवान् कृष्ण (मूल सत्व-गुण—ज्ञान-शक्ति : भगवान् महा-विष्णु) और भगवान् शिव (मूल तमो-गुण--क्रिया-शक्ति : भगवान् महा-रुद्र) समत्व-भाव में विराजमान हैं। 'चतुर्दश-मन्वार' दश-महाविद्याएँ और जीवन की चार अवस्थाएँ—१ जाग्रत्, २ स्वप्न, ३ सुषुप्ति और ४ तुरीय—ये चौदह भाव बताता है। जाग्रत् में अहङ्कार द्वारा क्रिया होती है। स्वप्न में मन की क्रिया होती है। सुषुप्ति में बुद्धि की क्रिया है और तुरीय अवस्था में चित्त की क्रिया समाई हुई है। इस प्रकार 'श्री-चक्र' में विलक्षण क्रिया-दैवत समाये हैं, जो सतत चिन्तन-पूजन का विषय है।

४ 'श्री-चक्र'—अखिल विश्व-अस्तित्व का वर्णन

यह विश्व-सृष्टि अनन्त है। इसमें अनन्त पृथ्वियाँ तथा अनेक कोटि सूर्य हैं। प्रत्येक सूर्य के साथ उसके ग्रह हैं, जो उस सूर्य द्वारा प्रकाशित होते हैं तथा उस सूर्य के गुरुत्वाकर्षण में उस सूर्य की प्रदक्षिणा करते हैं। एक तन्त्र-ग्रन्थ में निम्नलिखित श्लोक ग्रन्थ-पृष्ठ पर लिखा हुआ पाया गया है—

भू चावनिश्चन्द्र-सुतो भुवश्च, स्वर्मङ्गलो श्रीगुरवो महश्च।
कूर्मो जनश्चारु-तपो वराहः, सत्यश्च शुक्रो भुवनानि सप्त॥

इस पृथ्वी से हमारा यह सूर्य लगभग नौ करोड़ तीस लाख मील दूर है। हमारी पृथ्वी तथा मङ्गल, बुध, वृहस्पति, शुक्र, शनि, नेप्चून, हर्षल आदि ग्रह इस सूर्य की प्रदक्षिणा करते हैं। इन ग्रहों में शास्त्रोक्त सप्त लोकों की स्थिति है। यथा—१ पृथ्वी : भू-लोक, २ बुध : भुवर्लोक, ३ मङ्गल : स्वर्ग-लोक, ४ वृहस्पति : महर्लोक, ५ यूरीनस (कूर्म) : जन-लोक, ६ नेप्चून (वराह) : तप-लोक, ७ शुक्र : सत्य-लोक, ८ शनि : पाताल (शनि तथा उसकी रिङ्ग में सप्त-पाताल-वर्णन कहा है), ९ राहु : छाया-ग्रह, १० केतु : धूमकेतु। सूर्य-सहित ये सब ग्रह मिलाकर एक 'सौर-मण्डल' कहलाता है। यह **'भू-सौर मण्डल'** है। इसी प्रकार भुवः सौर-मण्डल, स्वस्सौर-मण्डल, महस्सौर-मण्डल, जनः सौर-मण्डल, तपः सौर-मण्डल, सत्य सौर-मण्डल—ये सप्त सौर-मण्डल मिलकर एक **'ब्रह्माण्ड'** कहलाता है। यह **'भू-ब्रह्माण्ड'** है।

इसी क्रम से भू-ब्रह्माण्ड, भुवः ब्रह्माण्ड, स्वर्ब्रह्माण्ड, महर्ब्रह्माण्ड, जन-ब्रह्माण्ड, तप-ब्रह्माण्ड तथा सत्य-ब्रह्माण्ड--इन सात ब्रह्माण्डों का एक **'महा-ब्रह्माण्ड'** होता है। ऐसे ही भू-महा-ब्रह्माण्ड, भुवर्महा-ब्रह्माण्ड, स्वर्महा-ब्रह्माण्ड, महर्महा-ब्रह्माण्ड, जन-महा-ब्रह्माण्ड, तप-महा-ब्रह्माण्ड तथा सत्य-महा-ब्रह्माण्ड—इन सात महा-ब्रह्माण्डों का एक **'अति-ब्रह्माण्ड'** होता है। सात अति-ब्रह्माण्डों का एक **'वृहत्-ब्रह्माण्ड'** होता है। सात वृहत् ब्रह्माण्डों का एक **'लव-ब्रह्माण्ड'**, सात लव-ब्रह्माण्डों का एक **'सतत-ब्रह्माण्ड,'** सात सतत ब्रह्माण्डों का एक **'महा-सौर ब्रह्माण्ड,'** सात महा-सौर ब्रह्माण्डों का एक **'पूर्ण सप्तक'** होता है।

अपने इस पूर्ण 'सप्तक' के स्वामी भगवान् श्री शङ्कर हैं। इस एक सप्तक में सब मिलाकर ५७,६४,८०१ सूर्य हैं। अपने इस सप्तक से शत-गुण बड़े दूसरे दश-लक्ष सप्तक इस महा-विचित्र शून्य में सुने जाते हैं। महा-सृष्टि के इस महा-विस्तार को एक 'केयूर' कहते हैं। प्रत्येक 'सप्तक' अलग-अलग है तथा एक-दूसरे के बीच में अनुल्लंघीय महा-शून्य है। प्रत्येक 'सप्तक' के अधिष्ठाता पुरुष (भगवान् शङ्कर) शिव पृथक्-पृथक् हैं तथा प्रत्येक सप्तकाधीश के परे व्यापक चैतन्य शक्ति-मय अनन्त चिद् है। सप्तकाधीश महा-पुरुष का गुण-त्रय भेद से 'त्रिपुटि' चक्र है—

१ श्री महा-विष्णु---श्रीनाथ--भगवान् कृष्ण।

२ श्री महा-दुर्गा—दुर्ग-नाथ—विश्व-व्यापिनी महा-शक्ति श्री दुर्गा।

३ श्री महारुद्र---श्री आदि-नाथ भगवान् शिव।

'श्री-चक्र' स्थित मूल-योनि व चतुष्कोण विश्व-अस्तित्व की उक्त तीन प्रधान भाव-शक्तियों (त्रिपुटि-चक्र) का दिग्दर्शन है। 'त्रिपुटि-चक्र' के मिश्रित गति-संघर्षण-भाव बाह्य-योनि, कोण व दलों में प्रस्फुटित होते हैं।

'श्री-चक्र' की मध्य-योनि में मूल-तम (मूल इच्छा शक्ति) का भाव है, जो कि कृष्ण-वर्ण भाव है। इस मूल-तम को महा-विष्णु तम कहते हैं।

मध्य-योनि के दोनों ओर दो योनिज चतुष्कोण हैं। तमज मूल क्रिया-भाव उन चतुष्कोणों में आस्फुरण पाता है। उससे मूल-रज (श्री आदि-नाथ भगवान् शिव) तथा मूल-सत्व (श्री महा-दुर्गा) का उद्भव होता है। मूल-सत्व की प्रशान्त गति का भाव महा-पुरुष, सिद्ध, योगी, देवेश भी नहीं जान सकते। अतः अनुभवी उसे स्थिति-मय गुण-नाम से पहचानते हैं। मूल-रज में स्पन्द का भाव स्फुरता है।

विश्वास्तित्व की ये तीन भाव-शक्तियाँ 'त्रिपुटि'-चक्र के नाम से कही जाती हैं। इस 'त्रिपुटि'-चक्र के मिश्रित गति-संघर्षण के भाव बाह्य-योनि में स्फुरते हैं। ज्ञान, क्रिया, काम-दायिनी, मनोभवा, रति-प्रिया, नन्दा, मनोन्मनी आदि नामों वाली स्फुरण–शक्ति में से प्रवाह जगानेवाली महा-शक्तियां उस मूल–शक्ति 'त्रिपुटि'-चक्र के मिश्रित गति-संघर्षण के भाव हैं। उनमें से प्रत्येक में एक गुण की प्रधानता तथा अन्य गुणों का गौणत्व है।

इस प्रकार 'श्री-चक्र' में स्थित मूल-योनि 'कारण' - विश्व का उत्पत्ति-स्थान है। यह उत्पत्ति-स्थान 'त्रिपुटि'—त्रि-रूपात्मक है। पहला ऊर्ध्व-स्थित विन्दु विश्व-रूपिणी परमा-शक्ति त्रिपुरा के मुख का द्योतक है और शेष दो विन्दु देवी के स्तन-द्वय के रूप में निम्न भाग में स्थित हैं। सूक्ष्म भाव लेने पर ये तीन विन्दु क्रमशः सूर्य, चन्द्र, अग्नि के द्योतक हैं। यहाँ सूर्य, चन्द्र और अग्नि से तात्पर्य हमारे ग्रहों से नहीं है। ये वास्तव में परा-विन्दु की प्रकाश और विमर्श नामक उन अवस्थाओं के अन्य नाम मात्र हैं, जो सृष्टि कार्य-काल में उद्भूत होती हैं। इनके चारों ओर पन्द्रह गुणों सहित पञ्च-भूतों व सत्-रज-तम त्रिपुणों की द्योतक नित्या देवता या देवियां अङ्ग या आवरण-देवताओं के रूप में स्थित हैं। यहीं से नवावरणात्मक विश्व-महायन्त्र-जाल (श्री-चक्र) का प्रवर्तन होता है।

उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'श्री-चक्र' अखिल विश्व-अस्तित्व का पूर्ण द्योतक है। इसी प्रकार शब्द-सृष्टि का भी परिचायक होने से वह 'मातृका-मय' भी है। 'शब्द' और 'अर्थ' के भेद से यह सूक्ष्म शब्द-सृष्टि दो प्रकार की है—(१) अर्थ-सृष्टि, (२) शब्द-सृष्टि। 'अर्थ-सृष्टि' तत्त्वात्मिका है और 'सब्द-सृष्टि' मातृका-रूपा। मातृका के भी स्वर, स्पर्श और व्यापक अर्थात् अन्तःस्थ भेद से तीन खण्ड–१ चन्द्र, २ सौर और ३ आग्नेय-रूप हैं। 'श्री-चक्र' से इन सबकी अनुभूति प्राप्त होती है। यही कारण है कि वेद-सार 'प्रणव' (ॐ), जो शब्द-ब्रह्म का प्रतीक है, उसके पाँच मुख्य अवयवों—अ, उ, म, नाद और विन्दु—का समन्वय 'श्री-चक्र' के सृष्टि, स्थिति, सँहार, अनाख्या और भासा—इन पांच क्रमों से भले प्रकार हो जाता है।

संक्षेप में कह सकते हैं कि स्थूल बाह्य सृष्टि एवं सूक्ष्म अन्तः सृष्टि दोनों की अभिव्यक्ति 'श्री-चक्र' द्वारा होती है।

५ महा-विन्दु

अव्यक्त, पूर्ण, निराकार, प्रपञ्चातीत, निर्गुण ब्रह्म के भीतर हमारा दृष्टि-गोचर ब्रह्माण्ड किस रूप में निवास करता है ? वहाँ उसका क्या स्वरूप होता है ? आज तक इसका किसी के द्वारा वर्णन नहीं किया जा सका। अति-सूक्ष्म, परम-कारण में लीन, अनिर्वाच्य ब्रह्माकार-स्वरूप मात्र के सिवा और कुछ नहीं था, यही कहते बनता है।

जब अन्तरस्थ तरङ्ग में विश्व की चैतन्य-स्मृति जाग उठती है, तब अकुल-देश (नितान्त अधः देश) से महा-कुण्डलिनी शक्ति ऊर्ध्व-गामिनी होकर ऊर्ध्व-मूलस्थ किसी गुप्त विन्दु में प्रवेश करती है। उस समय ब्रह्म-गर्भ के भीतर, परा-शक्ति अपने साथ अति-सूक्ष्म एकीकृत मूल विश्व-प्रकाश को देखने के लिये आकर्षित होती है और परम शिव के साथ अपने को साम्य-भाव में युक्त पाती है। ठीक उसी समय वह गुप्त विन्दु एक श्वेत-विन्दु के रूप में भासने लगता है।

यही श्वेत-विन्दु महा-विन्दु है। इस विन्दु को कोई चैतन्य ज्योतिर्लिङ्ग कहता है, कोई स्वयंभू-लिंग कहता है। तन्त्रों में यह विन्दु 'काम-रूप' पीठ के नाम से प्रसिद्ध है। यही अनन्त कलाओं से युक्त होकर निष्कल-अदृश्य-भाव से 'अहं'-रूप में आत्म-प्रकाश करता है।

यह महा-विन्दु अपने उद्गार में जिस समय क्रीडा-मय होता है, उस समय शिव-शक्ति का एकी-भूत साम्य भंग हो जाता है। शक्ति शिव से अलग हो पड़ती है। श्वेत-विन्दु त्रिकोण-गर्भित रक्त-विन्दु में रूपान्तरित हो जाता है। यहाँ से महा-शक्ति का आत्म-प्रकाश परा-वाणी के रूप में प्रसारित होता है। समस्त सूक्ष्म ब्रह्माण्ड में प्रणव का उद्घोष होने लगता है। सूक्ष्म ब्रह्माण्ड 'तुरीयातीत-अवस्था' से निकल कर तुरीय-अवस्था को प्राप्त होता है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड विन्दु-मय चैतन्य-रूप धारण करता है। समस्त लोकों का प्रत्येक विन्दु विमर्श पाने के लिये उत्कण्ठित हो उठता है।

इसी समय परा-वाणी-मय भूमि में परा-शक्ति आत्म-गर्भस्थ लोकों का वर्तमान स्वरूप देखती है। इस समय लोकों के नित्य-मण्डल में किसी भी प्रकार का आवरण, विक्षोभ अथवा चञ्चलता नहीं होती। यह शान्ति-मय अवस्था है।

'महा-विन्दु'-गर्भित शिव-शक्ति की कला 'शान्त्यतीत-कला' है। यहाँ शिव-तत्व दस गुप्त भुवन-मय और शक्ति-तत्व पाँच गुप्त भुवन-मय है। इन्हीं पन्द्रह गुप्त भुवनों को 'वैन्दव-पुर' कहते हैं।

शिव-तत्व के दस गुप्त भुवन—१ अनाश्रित, २ अनाथ, ३ अनन्त, ४ व्योम, ५ व्यापिनी, ६ ऊर्ध्व-गामिनी, ७ मोचिनी, ८ रोचिका ९ दीपिका और १० इंधिका।

शक्ति-तत्व के पाँच गुप्त भुवन—१ शान्त्यतीत, २ शान्ति, ३ विद्या, ४ प्रतिष्ठा और ५ निवृत्ति। शान्ति, विद्या, प्रतिष्ठा और निवृत्ति—ये चार कलायें 'अन्तः-कला' कहलाती हैं। इनमें शान्ति-कला अठारह गुप्त भुवन-मय है। इसमें १ सदाशिव, २ ईश्वर और ३ शुद्ध-विद्या-तत्व हैं। पूर्ण विवरण इस प्रकार है—

सदाशिव-तत्व में एक भुवन है, जिसे सदाशिव-भुवन कहते हैं।

ईश्वर-तत्व में आठ भुवन हैं—१ शिखण्डी, २ श्रीकण्ठ, ३ त्रिमूर्ति, ४ एक-नेत्र, ५ एक-रुद्र, ६ शिवोत्तम, ७ सूक्ष्म और ८ अनन्त।

शुद्ध-विद्या-तत्व में नौ भुवन[1] हैं—१ मनोन्मनी, २ सर्व-भूत-दमनी, ३ बल-प्रमथिनी, ४ बल-विकरिणी, ५ कल-विकरिणी, ६ काली, ७ रौद्री, ८ ज्येष्ठा और ९ वामा।

इस प्रकार 'वैन्दव-पुर' में मूल ३६ तत्वों में से पाँच तत्वों का वर्णन है। शेष ३१ तत्वों का वर्णन क्रमशः आगे होगा।

संक्षेप में 'महाबिन्दु'-रूपी तत्वातीत अवस्था में परा-वाक्-मय, परा-संवित्, 'निष्कल ब्रह्म' अनिवर्चनीय है। उस अनिर्वचनीय अवस्था में महा-शक्ति ब्रह्म में लीन रहती है। दूसरे शब्दों में निष्कल ब्रह्म उस समय स्वभावतः अपने आप को ही देखता है। जैसे निद्रा में सभीं प्राणी अपने ही भीतर अपनी शक्ति को गुप्त कर निष्फल वन जाते हैं और स्वप्नावस्था को प्राप्त होकर अपने ही भीतर अनेक दृश्यों की रचना करते हैं, ठीक इसी प्रकार निष्कल ब्रह्म के भीतर समाये हुए विश्व की स्मृति चैतन्य हो उठती है। चारों ओर 'अहमस्मि' का प्रकाश-विमर्श होने लगता है। निष्कल-ब्रह्म सकल-ब्रह्म हो जाता है। शिव-शक्ति पृथक्-पृथक् हो जाते हैं।

इस पृथकता के भाव में जब दोनों का परस्पर-सम्बन्ध फिर होता है, तब परा-वाक् 'नाद' के रूप में उदय होती है। महा-शक्ति अखिल जगत् की सृष्टि करने के लिए इच्छा-शक्ति-मयी कामिनी बनकर स्पन्दित होने लगती है। महा-शक्ति की इसी इच्छा के भीतर कारण, सूक्ष्म और स्थूल जगत् का बीज है।

जब शक्ति निष्कल-ब्रह्म में लीन रहती है, तब उसकी 'उन्मनी स्थिति' होती है। जब वह कला-मयी होकर सकल ब्रह्म-मयी हो जाती है, तब उसकी स्थिति को 'समनी' कहते हैं। 'उन्मनी' और 'समनी' की सन्धि ही 'नाद' है। यह 'नाद' आदि में प्रगट होकर एक 'विन्दु' में रूपान्तरित होता है, जहाँ से सृष्टि-क्रिया प्रारम्भ होती है।

'महा-विन्दु' में सत् की प्रधानता से दोनों मूल तत्व—शिव और शक्ति सृष्टि के रूप में, 'नाद' में रज की प्रधानता से क्रिया-रूप में और 'नाद' तथा 'विन्दु' के एकीकरण तम की प्रधानता में विसर्ग की अवस्था को प्राप्त होते हैं। अतः महा-विन्दु (श्वेत-विन्दु)—रक्त-विन्दु में और रक्त-विन्दु विराट् रूप में क्रमानुसार बदलते हैं। 'नाद' और 'विन्दु' के भीतर शक्ति की कलाओं की भिन्नता के कारण 'विराट्' ४ अण्डाकार रूपों में परिणत होता है—१ ब्रह्माण्ड, २ मूलाण्ड, ३ मायाण्ड और ४ शक्त्यण्ड।

---

[1] 'भुवन' का अर्थ है—'अस्माद् भवतीति भुवनम्' अर्थात् जिससे जो कुछ उत्पन्न होता है, वही उसका भुवन है। शुद्ध आत्म-देश में कुल २२४ गुप्त भुवन हैं। यथा—

शुद्ध तत्व में	३३ भुवन	५ तत्व
शुद्धाशुद्ध तत्व में	२७ भुवन	७ तत्व
अशुद्ध तत्व में	१६४ भुवन	२४ तत्व
कुल योग	२२४ भुवन	३६ तत्व

ये २२४ भुवन परम-शिव के भीतर रहनेवाली आत्माओं के भोग के लिए हैं। परम-शिव के भीतर अव्यक्त रूप से रहनेवाली आत्माओं की असंख्य श्रेणियाँ हैं। इनमें मनुष्य, देवता, परमेश्वर, परमेश्वरी आदि सब हैं। किन्तु शुद्ध-भुवनों में शुद्ध-आत्मायें-शुद्ध-तत्व हैं।

९ विन्दु

प्रलय-काल को विश्व की सुषुप्ति-अवस्था कहते हैं। हमारे पिण्ड में भी सुषुप्ति-अवस्था प्रलय ही है। जैसे सुषुप्ति या घोर आनन्द-मय निद्रा से उठकर हम फिर जागृत हो जाते हैं, उसी प्रकार प्रलय के बहुत काल पश्चात् जब श्वेत-विन्दु (महा-विन्दु) रक्त-विन्दु (विन्दु) के रूप में उदित होता है, उस समय अदृश्य विश्व की समस्त आत्माएँ क्रीड़ा हेतु जाग उठती हैं। जब तक रक्त-विन्दु का उदय नहीं होता, तब तक समस्त विश्व ब्रह्म में इस प्रकार लय रहता है कि वहाँ ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय, भासक-भास्य कुछ भी नहीं रहता।

यह रक्त-विन्दु सम्पूर्ण विश्व का परम वोज है। यहीं से विश्व-विकास-क्रिया का प्रादुर्भाव होता है। दूसरे शब्दों में रक्त-बिन्दु महा-विन्दु (श्वेत-विन्दु) को अपने भीतर छिपा लेता है। यह विश्व-रचना का प्रथम स्फुरण है। यह जगत् की मूल-योनि है। इसी के नाम महा-त्रिपुर-सुन्दरी, कामेश्वर-कामेश्वरी, षोडशी, श्री, सुन्दरी, ललिता आदि हैं। महा-विन्दु में देश-काल का सम्बन्ध लेश-मात्र भी नहीं रहता। विन्दु-चक्र के रक्त-विन्दु में बीज-रूप से सारे प्रपञ्च आ जाते हैं। इसीलिये 'विन्दु-चक्र' प्रधान चक्र है।

'विन्दु-चक्र' में श्री कामेश्वर के साथ ही कामेश्वरी सर्वदा नित्यानन्द-मय होकर विहार करती हैं। इसलिये इस चक्र का नाम **'सर्वानन्द-मय-चक्र'** है।

सुषुप्ति-काले सकले विलीने तमोऽभिभूतः सुख-रूपमेति।
चित्त-मयोऽहङ्कारः सु-व्यक्तो हार्ण समर-साकारः।
शिव-शक्ति-मिथुन-पिण्डः कवली-कृत-भुवन-मण्डलो जयति॥ (कालिका-पुराण)

प्रलय के बाद ब्रह्म में शक्ति का प्रतिविम्ब पड़ने से पूर्ण अहं-भाव-विमर्श उत्पन्न होता है। यही सम्पूर्ण विश्व की सृष्टि, स्थिति और प्रलय का कारण है। इसी को श्रुति में नाम-रूप की अव्याकृत अवस्था कहा गया है। तान्त्रिक-श्रेष्ठ नागानन्द कहते हैं—

'विमर्शो नाम विश्वाकारेण विश्व-प्रकाशेन विश्व-संहारेण वा अकृत्रिमोऽहमिति स्फुरणम्।'

'अहम्'—यह स्वाभाविक स्फुरण ही विमर्श-शक्ति है। यही शक्ति जगत् की सृष्टि, स्थिति और प्रलय का कारण है। यद्यपि पूर्ण अहं-भाव या शुद्ध-हन्ता ही ब्रह्म-रूप है, तथापि जैसे सम्मुख स्थित दर्पण में प्रतिबिम्बित हुये बिना अपना मुख नहीं दीख पड़ता, उसी प्रकार विमर्श-शक्ति में प्रतिबिम्बित हुये बिना आत्मा की स्पष्ट अभिव्यक्ति नहीं होती। अतः अहं-भाव विमर्श-मय है—'नास्त्येव सा चिदपि यस्य विमृष्ट-रूपा।' फिर—'विना त्वात्मा त्वया नहि।'

अहं-भाव-रूप शिव-शक्ति के 'अ', 'ह' और 'ँ'—ये तीन वर्ण हैं। इनमें 'अ'कार प्रकाश-स्वरूप, 'ह'कार विमर्श-शक्ति-रूप और 'ँ' विन्दु-रूप है—इस विन्दु के भीतर प्रकाश (शिव), विमर्श (शक्ति) की रहस्यमय साम्यता व चैतन्य का पूर्ण स्फुरण रहता है।

यही 'काम-रूप पीठ' कहलाता है। यहीं से बीज-रूप विश्व नित्य-मण्डल का रूप धारण करने लगता है। विन्दु-मय परा-वाक् से ही ॐ कार का 'अ'कार, 'उ'कार और 'म'कार के रूप में; वैखरी, मध्यमा और पश्यन्ती के रूप में; त्रिलोक, त्रिदेवता, त्रिकाल, त्रि-अवस्था (सृष्टि, स्थिति, संहार); वामा, ज्येष्ठा और रौद्री के रूप में; सत-रज-तम गुणों के रूप में विकास होता है। इस प्रकार जितने भी त्रयी विद्या के विषय हैं, वे सब उदय होते हैं।

इस रक्त-विन्दु में शुद्धाशुद्ध-तत्व के अन्तर्गत विद्या-कला है, जिसके भीतर सात तत्व और २७ भुवन हैं—

१ माया-तत्व—इसमें १ अंगुष्ठ मात्र, २ ईशान, ३ एकेक्षण, ४ एक-पिङ्गल, ५ उद्भव, ६ भव, ७ वाम-देव और ८ महाद्युति—ये ८ भुवन हैं।
२ काल-तत्व—इसमें 'शिखेश' और 'एक-वीर' दो भुवन हैं।
३ कला-तत्व—इसमें 'पञ्चान्तक' और 'शूर' दो भुवन हैं।
४ विद्या-तत्व—इसमें 'पिङ्ग' और 'ज्योति' दो भुवन हैं।
५ नियति-तत्व—इसमें 'संवर्त' और 'क्रोध' दो भुवन हैं।
६ राग-तत्व—इसमें १ एक-शिव २ अनन्त, ३ अज, ४ उमापति, और ५ प्रचण्ड—ये पाँच भुवन हैं।
७ पुरुष-तत्व—इसमें १ एक-बीर, २ ईशान, ३ ईश, ४ उग्र, ५ भीम और ६ वाम—ये छः भुवन हैं।

मूल छत्तीस तत्वों में से पाँच तत्वों का वर्णन 'महा-बिन्दु' में हो चुका है और सात तत्वों का वर्णन यहाँ किया गया। शेष २४ तत्वों का वर्णन क्रमशः आगे किया जायेगा।

७ त्रिकोण

'विचिकीर्षुर्घनी-भूता सा चिदभ्येति विन्दुताम्।'

अर्थात् विमर्श-शक्ति सृष्टि करने की इच्छा से 'विन्दु' - रूप में प्रकट होती है और—'**कालेन भिद्यमानस्तु स विन्दुर्भवति त्रिधा**' अर्थात् काल पाकर वही 'विन्दु' तीन भागों [त्रिकोण] में प्रकट होता है। इस 'विन्दु'-भाव में समस्त प्रपञ्च-वासना—जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति तथा ज्ञेय, ज्ञातृ और ज्ञान-भाव से वट-बीज के अन्तर्गत बीज और वृक्ष की भाँति सूक्ष्म-भाव से लीन रहती है। तत्-पश्चात् अन्त-र्लीन जगत् को व्यक्त करने की इच्छा से यह 'विन्दु' त्रिकोण-रूप में परिणत हो जाता है या अपने रश्मि-स्वरूप त्रिकोण को प्रकट करता है। स्पष्ट है कि यह 'विन्दु' त्रैलोक्य-प्रसविनी की विश्व-योनि या '**मम योनिर्महद् ब्रह्म**' है। 'त्रिकोण' त्रैलोक्य-प्रसविनी का बहिर्मुखी विलास है।

'विन्दु' और 'त्रिकोण' के स्थूल रूप या बाह्य सृष्टि का आध्यात्मिक रहस्य यह है कि सृष्टि १ शब्द और २ अर्थ-भेद से दो प्रकार की है। यद्यपि तन्त्र का सिद्धान्त है कि अर्थ-सृष्टि (त्रिकोण) भी शब्द-मूलक (विन्दु) है क्योंकि संसार का सभी व्यवहार शब्द-पूर्वक ही होता है। सभी प्रकार के अर्थों के पूर्व शब्द का उदय होता है किन्तु शब्द बिना अर्थ के भी अतीत अनागत विषयों एवं सर्वथा असत् शश-शृङ्गादि को भी अपनी वृत्ति से कल्पित कर देता है। अतः शब्द ही अर्थ-सृष्टि का मूल है।

प्रलय-काल में समस्त अर्थ-प्रपञ्च-जाल परा-वाक्-रूप शब्द-ब्रह्म में लीन हो जाता है और सृष्टि-काल में पुनः प्रकट हो जाता है, देखिये 'मातृका-चक्र-विवेक' तृतीय खण्ड, प्रथम सूत्र—

विश्रान्तमात्मनि परा ह्यय वाचि सुप्तौ, विश्वं वमत्यथ विबोध-पदे विमर्शः।

विन्दु-रूप परा-वाक् (मूल कारण-भूत विन्दु) से पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी-रूप त्रिपुटी के द्वारा त्रिकोणात्मक शब्द-सृष्टि अभिव्यक्त होती है। इन चारों को क्रमशः १ शान्ता, २ वामा, ३ ज्येष्ठा

और ४ रौद्री—१ अम्बिका, २ इच्छा, ३ ज्ञान और ४ क्रिया कहा जाता है। इनके अधि-दैवत १ अव्यक्त मूल-प्रकृति, २ ईश्वर, ३ हिरण्यगर्भ और ४ विराट् हैं। ये ही क्रमशः १ काम-रूप, २ पूर्ण-गिरि, ३ जालन्धर और ४ ओड्याण-पीठ हैं।

जब 'विन्दु' - रूप परा-वाक् पूर्वोल्लिखित पश्यन्ती आदि कार्य-विन्दुओं के सृजन में प्रवृत्त होती है, तब वह कारण-विन्दु 'रव' कहा जाता है और इसी 'रव' को शब्द कहा जाता है—**'स रवः श्रुति-सम्पन्नैः शब्द-ब्रह्मेति गीयते।'**

जिस प्रकार 'विन्दु' या 'परा-वाक्' सभी शब्दों की जननी है, उसी प्रकार वह अर्थ-रूप ३६ तत्वों—पञ्च-महाभूत, पञ्च-ज्ञानेन्द्रिय, पञ्च-कर्मेन्द्रिय, पञ्च-इन्द्रियों के विषय (=२०), २१ मन, २२ बुद्धि, २३ अहङ्कार, २४ प्रकृति, २५ पुरुष, २६ कला, २७ अविद्या, २८ राग, २९ कला, ३० नियति, ३१ माया, ३२ शुद्ध विद्या, ३३ ईश्वर, ३४ सदाशिव, ३५ शक्ति और ३६ शिव—की भी जननी है।

'विन्दु'-रूपी त्रैलोक्य-प्रसविनी शक्ति जब दूसरों की अपेक्षा न रखकर पूर्णाहं-भाव से **'सोऽहं'** रूप विमर्श वा स्पन्द का प्रकाश करती है, तब वह शिव-तत्व के नाम से अभिहित होती है।

जब अन्यापेक्ष होकर **'स इदम्'**—**'अहमिदम्'** इन दोनों भावों में समान-गुण-प्रधान रूप से उदासीन होकर विलास करती है, तब वह सदाशिव' और 'ईश्वर'-तत्व के नाम से सम्बोधित होती है। यहाँ 'सदाशिव' और 'ईश्वर' नामक अवस्थाओं में अन्तर इतना ही है कि 'सदाशिव'-दशा में 'अहम्' के अधि-करण-भूत चिन्मात्र में 'अहमिदम्' इत्याकारक 'इदम्' अंश का उल्लास होता है और 'ईश्वर'-दशा में 'इदम्' के अधिकरण-भूत चिन्मात्र में 'अहमिदम्' इत्याकारक 'अहम्' अंश का स्पष्ट उल्लास होता है। 'शुद्ध-विद्या' तत्व में ग्राह्य-ग्राहक-भाव समानाधिकरण हो जाता है।

फिर वैषम्य से 'इदम्' में ग्राह्य बुद्धि और 'अहम्' में ग्राहक-बुद्धि का होना ही अशुद्ध-विद्या वा 'माया' है।

जब उपर्युक्त त्रिविध विलास १ पर, २ अपर एवं ३ परापर—१ अहम्, २ इदम् और ३ त्वम् के समानाधिकरण अर्थात् 'शुद्ध-विद्या' से होते हैं, तब महा-विन्दु-रूपी शिव-शक्ति - तत्व के विधायक विन्दु-रूपी 'शुद्ध-विद्या', 'ईश्वर' एवं 'सदाशिव' कहलाते हैं। यही जब त्रिविध विलास अशुद्ध विद्या या 'माया'-जनित होते हैं, तब 'मैं', 'तू' और 'वह' रूपी व्यवहार के प्रयोजक हो जाते हैं और वह त्रिकोण-शक्ति 'मातृ-मेय-मान', 'ज्ञाता-ज्ञेय-ज्ञान', 'हरि-हर-हिरण्यगर्भ', 'इच्छा-ज्ञान-क्रिया', 'मन-बुद्धि-अहंकार', 'सत्व-रज-तम' आदि त्रिपुटी-भावों से पूर्ण हो जाती है। अर्थात् शून्य अकोणाकार 'विन्दु' त्रिपुटी के उद्भावनार्थ 'त्रिकोण' की आकृति धारण करता है, 'विन्दु'—'त्रिकोण' में विभक्त हो जाता है—**'सेयं त्रिकोण-रूपं याता त्रिगुण-स्वरूपिणी माता ॥२५॥'** (काम-कला-विलास)।

इस प्रकार त्रिकोण में अशुद्ध-तत्व के अन्तर्गत 'प्रतिष्ठा' और 'निवृत्ति'-कला का उदय होता है। 'प्रतिष्ठा' कला के भीतर २४ तत्व और ५६ भुवन होते हैं और 'निवृत्ति' कला में एक तत्व और १०८ भुवन। यथा—

१ प्रकृत्ति-तत्व—इसमें १ श्रीकण्ठ, २ भौम, ३ कौमार, ४ वैष्णव, ५ ब्रह्म, ६ भैरव, ७ कृत और ८ अकृत—ये आठ भुवन हैं।

२ अहङ्कार-तत्व—इसमें 'स्थलेश्वर' नामक एक भुवन है।

३ बुद्धि-तत्व—इसमें १ ब्रह्मा, २ अजेश, ३ सौम्य, ४ ऐन्द्र, ५ गन्धर्व ६ यक्ष, ७ राक्षस और ८ पिशाच—ये आठ भुवन हैं।

४ मन, ५ श्रोत्र, ६ त्वक्, ७ चक्षु, ८ जिह्वा और ९ नासिका—इन छः तत्वों के समुदाय में 'स्थूलेश्वर' नामक एक ही भुवन है।

१० वाक्, ११ पाणि, १२ पाद, १३ पायु और १४ उपस्थ—इन पाँच तत्वों के समुदाय में 'शंकु-कर्ण' नामक एक भुवन है।१५ शब्द, १६ स्पर्श, १७ रूप, १८ रस और १९ गन्ध—इन पाँच तत्वों के समुदाय में १ कालंजर, २ मण्डलेश्वर, ३ माकोर, ४ द्राविड़ और ५ छागलाण्ड ये पाँच भुवन हैं।

२० आकाश-तत्व—इसमें १ स्थाणु, २ स्वर्णाक्ष, ३ भद्र-कर्ण, ४ गो-कर्ण, ५ महालय, ६ अवि-मुक्त, ७ रुद्र-कोटि, ८ वस्त्र-पाद—ये आठ भुवन हैं।

२१ वायु-तत्व—इसमें १ भीमेश्वर, २ महेन्द्र, ३ अट्टहास, ४ विमलेश, ५ नल, ६ नाकल, ७ कुरुक्षेत्र, ८ गया—ये आठ भुवन हैं।

२२ तेजस्-तत्व—इसमें १ भैरव, २ केदार, ३ महाकाल, ४ मध्य-देश, ५ अम्रातक, ६ जल्पेश, ७ श्री शैल, ८ हरिश्चन्द्र—ये ८ भुवन हैं।

२३ जल-तत्व—इसमें १ लकुलीश, २ पारभूति, ३ डिण्डी, ४ मुण्डी, ५ विधि, ६ पुष्कर, ७ नैमिष, ८ प्रभास (अमरेश)—ये आठ भुवन हैं।

२४ पृथ्वी-तत्व—इसमें १०८ भुवन हैं, जिनके नामों का पता नहीं चलता। 'भद्रकाली' से लेकर 'कालाग्नि'-पर्यन्त जो भुवन हैं, वही १०८ भुवन हैं।

इस प्रकार महा-विन्दु, विन्दु और त्रिकोण इन तीन चक्रों में क्रमशः तीन तत्वान्तर्गत पाँच कलाओं के भीतर छत्तीस तत्व हैं। यथा—

महा-विन्दु	शुद्ध-तत्व में	५ तत्व	३३ भुवन	२ शान्त्यतीत और शान्ति-कला
विन्दु	शुद्धाशुद्ध तत्व में	७ तत्व	२७ भुवन	१ विद्या-कला
त्रिकोण	अशुद्ध तत्व में	२४ तत्व	१६४ भुवन	२ प्रतिष्ठा और निवृत्ति-कला

संक्षेप में त्रिकोण और मध्य-बिन्दु एक महा-यवनिका है, जिसके भीतर १४ लोक-मय (सप्त-लोक+सप्त पाताल) विशाल मन्दिर है, जिसमें अपने-अपने युक्त स्थान में समस्त विश्व मण्डलाकार रूप में कारण-देह के बने हुये स्थित हैं। इस विराट् मन्दिर के चार आम्नाय-मय चार द्वार हैं। मन्दिर के मध्य में महा-शक्ति एक मणि-मय महा-सिंहासन के ऊपर विराजमान हैं। इस सिंहासन के ५ पाद हैं—एक पाद में ब्रह्मा, एक पाद में विष्णु, एक पाद में रुद्र, एक पाद में ईश्वर और सिंहासन के बीच के मध्य पाद में सदाशिव अवस्थित हैं। ये पञ्च-देवता शव-रूप मूर्ति-वत् हैं और महा-शक्ति के द्वारा जब इनमें चैतन्यता आती है, तो ये पाँचों इस विश्व के पंचायतन-देवता हो जाते हैं।

महा-यवनिका के भीतर महा-शक्ति सब लोकों में और उनके भीतर की अव्यक्त आत्माओं में महत्-तत्व, महदहंकार, मन, वशीकरण, राग-द्वेष आदि को व्याप्त कर सबमें पुनः पञ्च-तन्मात्रा—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध का संचार करती है। इससे विश्व और उसके भीतर की तत्तद् वस्तुएँ अपने-अपने कारण-रूप में प्रत्यक्ष हो जाती हैं। इसी अवसर पर काल-क्रम प्रारम्भ होकर प्रत्येक पक्ष की पन्द्रह नित्या-शक्तियाँ अथवा अङ्गी देवता नियुक्त हो जाती हैं, जिनके नाम तिथि-क्रम से इस प्रकार हैं—

१ कामेश्वरी नित्या, २ भग-मालिनी नित्या, ३ नित्य-क्लिन्ना, ४ भेरुण्डा, ५ वह्नि-वासिनी, ६ महा-वज्रेश्वरी, ७ शिव-दूती, ८ त्वरिता, ९ कुल-सुन्दरी, १० नित्या, ११ नील-पताका, १२ विजया, १३ सर्व-मङ्गला, १४ ज्वाला-मालिनी और १५ चित्रा नित्या। सोलहवीं महा-नित्या स्वयं महा-शक्ति

ललिता त्रिपुर-सुन्दरी हैं, जिनसे इन शक्तियों का प्रादुर्भाव होता है। यही चौदह भुवन-रूपी राज्यों की ईश्वरी हैं, इसीलिये इन्हें 'राज-राजेश्वरी' कहते हैं।

८ अष्टार

'श्री-चक्र 'समस्त विश्व (ब्रह्माण्ड या पिण्डाण्ड) का प्रतीक है। इसमें 'विन्दु' और 'त्रिकोण' दोनों चेतन, जड़ एवं उभयात्मक विश्व के त्रिपुटी-रूप हैं। दोनों चित् और चैत्य के पारस्परिक संश्लेष को सूचित करते हैं। 'विन्दु' अन्तर्मुखी विलास करनेवाली विमर्श-शक्ति को **'इच्छा-माये प्रभोः'** के अनुसार यद्यपि सृष्टि के किसी निश्चित क्रम की अपेक्षा नहीं है, तथापि मुख्य कल्पना यही है कि चित्त और चैत्य का परस्पर-सम्बन्ध जड़ और चैतन्य—इन दो भागों में विभक्त हो जाता है। शिव के चार तत्व—१ शिव-तत्व, २ शुद्ध-विद्या-तत्व, ३ ईश्वर-तत्व और ४ सदाशिव-तत्व चार त्रिकोणों में फैलते हैं तथा जीव के—१ कला, २ राग, ३ अविद्या और ४ कंचुक—ये चार तत्व शेष चारों त्रिकोणों में फैलते हैं। ये दोनों मिलकर अष्ट-त्रिकोण—'अष्टार' हो जाते हैं। तब महा-शक्ति महा-माया का रूप धारण कर विश्व में शिव और जीव दोनों की कलायें प्रदर्शित करती है, देखिए स्वच्छन्द-संग्रह—

चितिश्चैत्यं च चैतन्यं चेतना-द्वय कर्म च, जीवः कला च देवेशि ! सूक्ष्मं पुर्यष्टकं मतम्।
'अष्टार'-व्यपदेशोऽयं चिन्तिर्वार्णैषणादिकम्, सूक्ष्मं पुर्यष्टकं देव्या मतिरेषा हि गौरवी ॥

भाव यह है कि शिव-शक्ति का प्रकाश सूक्ष्म रूप से अष्ट-त्रिकोण में विभक्त होकर महा-शक्ति एक-एक त्रिकोण की एक-एक शक्ति—वाग्देवता के रूप में हो जाती है।

मातृका-सृष्टि में भी तान्त्रिक रहस्य के अनुसार जीव-चतुरस्र 'य र ल व'—य-वर्ग के रूप में और शिव-चतुरस्र 'श ष स ह'—'श'-वर्ग के रूप में अष्टार अथवा अष्ट-कोणों में प्रकाशित होते हैं। 'श' कार ही मध्य-विन्दु कूटाक्षर शिव-तत्व या कूट-तत्व है। 'य'-वर्ग और 'श'-वर्ग की मातृका-शक्तियाँ अष्ट-त्रिकोण में आठ तत्वों की द्योतक हैं। इस अष्टार में उतर कर महा-शक्ति जीव और शिव दोनों का समष्टि रूप हो जाती है और फिर अष्ट-शक्तियों में विभक्त शीतोष्ण, सुख-दुःख, स्वेच्छा, सत-रज-तम का विश्व-व्यापी संचार करती है। इन अष्ट-शक्तियों—वाग्देवताओं के नाम इस प्रकार हैं—१ वशिनी, २ कामेश्वरी, ३ मोदिनी, ४ विमला, ५ अरुणा, ६ जयिनी, ७ सर्वेश्वरी और ८ कौलिनी।

रक्त-विन्दु, त्रिकोण और अष्ट-कोण-मय चक्र—ये तीनों मिलकर 'प्रमातृ-पुर' तथा 'अग्नि-खण्ड' कहलाते हैं। यह विश्व की स्वप्नावस्था है। ये तीनों सृष्टि के ही द्योतक हैं। 'विन्दु' इच्छा-शक्ति द्वारा सृष्टि-सृष्टि के रूप में, 'त्रिकोण' ज्ञान-शक्ति द्वारा सृष्टि-स्थिति के रूप में और 'अष्ट-कोण' क्रिया-शक्ति द्वारा सृष्टि-संहार के रूप का प्रदर्शक है।

'अष्ट-कोण' क्रिया-शक्ति-रूप अग्नि-खण्ड है। यहाँ से अग्नि की दश कलायें—१ धूम्रार्चिषी, २ ऊष्मा, ३ ज्वलिनी, ४ ज्वालिनी, ५ विस्फुलिङ्गिनी, ६ सुश्री, ७ सुरूपा, ८ कपिला, ९ हव्यवहा, १० कव्यवहा—विश्व-व्यापी रूप में फैल जाती हैं। सूक्ष्म विश्व-रचना प्रारम्भ हो जाती है। ज़ीव और शिव का साम्य भङ्ग होकर, दोनों अपने-अपने लिए पृथक्-पृथक् हुए से प्रतीत होते हैं। द्वैत-वाद यहीं से प्रारम्भ होता है।

इस प्रकार महा-शक्ति का माया-शक्ति के रूप में विलक्षण प्रादुर्भाव होता है। वह चैतन्य की शुद्ध पूर्णता को भङ्ग कर देश-काल, जन्म-मरण, बिषय-वासना आदि अनेक द्वन्द्वों को प्रगट कर विश्व

की आत्माओं को संसार-चक्र में डाल देती है, जिससे सब एक-दूसरे को अपने से भिन्न पदार्थों में देखने लगते हैं और अपनी मूल नैसर्गिक पूर्णता को खो बैठते हैं।

दूसरे शब्दों में महा-शक्ति की इच्छा से परा-संवित् से सारे प्रपंच का उदय होता है। निष्कल और निष्पन्द परम-शिव महा-शक्ति के योग से—विश्वातीत स्थिति से निकल कर सकल रूप को प्राप्त होकर उन्मनी-स्थिति में बिश्वोत्पादक हो जाते हैं। यही शिव का आदि-स्पन्द है, इसे 'शिव-तत्व' कहते हैं। इसके पश्चात् वह क्रियावान् होकर विश्वात्मक रूप को प्राप्त कर समनी-स्थिति में सम्पूर्ण विश्व को व्यक्त कर देते हैं। इसे 'सदाशिव-तत्व' कहते हैं। इससे यही ज्ञात होता है कि सर्वत्र शिव-शक्ति-तत्व के अतिरिक्त कुछ नहीं है। सम्पूर्ण विश्व परा-संवित् के परिवर्तन से ही १ चित्, २ चिति, ३ चित्त, ४ चैतन्य, ५ चेतना, ६ इन्द्रिय-कर्म, ७ देह और ८ कला-युक्त—अष्ट भूमिका से युक्त हो जाता है।

१ चित्—श्वेत-विन्दु की चैतन्यता को 'चित्' कहते हैं।

२ चिति—श्वेत-विन्दु की व्यापिनी-शक्ति को 'चिति' कहते हैं।

३ चित्त—भीतर और बाहर क्रिया-मय होना 'चित्त' कहलाता है।

४ चैतन्य—बाहर से लौटकर अन्तर-बोध होना 'चैतन्यत्व' है।

५ चेतना—अन्तर-बोध की दृढ़ धारणा ही 'चेतना' है।

६ इन्द्रिय-कर्म—कर्म एवं ज्ञान की इन्द्रियों के विविध व्यापार 'इन्द्रिय-कर्म' कहलाते हैं।

७ शरीर—स्थूल देह की इन्द्रियों द्वारा अनुभूत स्पर्शादि तन्मात्राएँ ही 'शरीर' हैं।

८ कला—अग्नि, सूर्य और चन्द्र की कलायें। चन्द्र सतोगुण-मय है। अग्नि तमोगुण-मय और सूर्य रजोगुण-मय वा सत् और तम की सन्धि है। ये तीनों शरीर की सूक्ष्म क्रिया-शील शक्तियाँ हैं, जो अन्तर और बाह्य में प्रकाश की ओर ले जाती हैं।

९ अन्तर्दशार

जब सम्पूर्ण विश्व अष्ट-भूमिका-मय हो जाता है, तब विश्व को स्वप्नावस्था के तन्मात्रा-मय देह के भीतर छिपे हुये देहस्थ अवयवों को कर्म-शील बनाने की तैयारी प्रारम्भ हो जाती है।

यहाँ 'इदम्' और 'अहम्' दोनों अपने-अपने लिये पृथक्-पृथक् हो जाते हैं। 'अहम्' और 'इदम्' के इस पृथक्-करण का परिणाम विश्व के जागृत काल में इस प्रकार होता है कि सर्वत्र और सर्वदा 'अहम्' और 'इदम्' ही भासने लगता है।

अग्नि की दश कलायें विश्व की सूक्ष्म तन्मात्रा-मय देह में फैलती हैं। अग्नि की अन्तःस्थित ये कलायें विश्व-व्यापी संचार करने के लिये महा-शक्ति की दश-शक्तियों के रूप में दश-त्रिकोणों (पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय) में फैल जाती हैं। इन दश शक्तियों के नाम हैं—१ सर्वज्ञा, २ सर्व-शक्ति, ३ सर्वैश्वर्य-प्रदा, ४ सर्व-ज्ञान-मयी, ५ सर्व-व्याधि-विनाशिनी, ६ सर्वाधार-स्वरूपा, ७ सर्व-पाप-हरा, ८ सर्वानन्द-मयी, ९ सर्व-रक्षा-स्वरूपिणी, १० सर्वेप्सित-फल-प्रदा।

इस प्रकार विन्दु, त्रिकोण, अष्टार का कामेश्वर-कामेश्वरी-रूपी तेज-युग्म इन्द्रिय-रूप से दशधा विभक्त होकर प्रकाशित होता है और शुद्ध आध्यात्मिक तन्मात्रा-मय लिङ्ग शरीर का प्रादुर्भाव होता है। प्रकृति-विकृति-रूपी उभयात्मक उक्त अन्तर्दशार-चक्र को स्थिति-चक्र, प्रमाण-पुर और सौर-खण्ड कहते हैं। यह शुद्ध तत्वान्तर्गत विद्या-तत्व है।

१० बहिर्दशार

इन्द्रिय-रूप से दशधा विभक्त तेज-युग्म पुनः इन्द्रियों के विषयों के रूप में (पञ्च-तन्मात्रा तथा पञ्च-भूत में) दशधा विभक्त हो प्रकाशित होता है—क्योंकि विषय ही सब अर्थों के साधन हैं। यही पुनः दशधा विभाजन बहिर्दशार कहलाता है—**'बाह्यो दशार-भागोऽयं बुद्धि-कर्माक्ष-गोचरः।'**

विश्व-व्यापी प्रवर्त्तन के लिये महा-शक्ति ही बहिर्दशार के रूप में पुनः दश-शक्तियों—१ सर्व-सिद्धि-प्रदा, २ सर्व-सम्पत्-प्रदा, ३ सर्व-प्रियङ्करी, ४ सर्व-मङ्गल-कारिणी, ५ सर्व-काम-प्रदा, ६ सर्व-दुःख-विमोचिनी, ७ सर्व-मृत्यु-प्रशमनी, ८ सर्व-विघ्न-निवारिणी, ९ सर्वाङ्ग-सुन्दरी और १० सर्व-सौभाग्य-दायिनी के रूप में दश बाह्य त्रिकोणों में फैल जाती है तथा प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त, धनञ्जय नामक दश प्राण-सञ्चार-शक्तियों के रूप में विश्व-व्यापी हो जाती है।

बहिर्दशार-रूपी यह दशधा विभाजन विश्व का स्वप्न-मय जागृत भाव है। यहाँ दश-इन्द्रियाँ और उनके कार्य आभ्यन्तर में अत्यन्त विलीन होकर, पञ्च-तन्मात्राओं के आश्रय में जागृत चैतन्य का विलास होता है। अतः लिङ्ग-शरीर को कर्मशील बनाने की तैयारी प्रारम्भ हो जाती है। इसलिये इसे स्थिति-चक्र, सौर-खण्ड और जागरात्मक प्रमाणपुर कहते हैं।

इसी चक्र में छिपे हुए विषयादिकों का प्रागट्य प्रारम्भ होता है। जड़ और चैतन्य अपने-अपने लिए पृथक्-पृथक् हो जाते हैं। चित्त चैतन्य में लीन होकर चेतना-रूप में बहिर्व्याप्त होता है। इन्द्रियां और मन विषय-ग्राही होने के कारण, इनमें चेतना का स्फुरण होने लगता है।

इस प्रकार शुद्धाशुद्ध तत्वों के अन्तर्गत यह चक्र आत्म-तत्व है। यहाँ माया प्रलयाकल-भाव में है। प्रलयाकल-भाव में विश्व के समस्त जीव अज्ञान और माया दोनों से आच्छन्न होते हैं अथवा यही से अज्ञान प्रारम्भ होता है और स्थूल रूप में आते-आते यहाँ से प्रत्येक स्थिति अज्ञान से घिरती जाती है। किन्तु महा-शक्ति विश्व-उत्पादिका होते हुए सदैव निर्विकारा और अपरिणामिनी ही रहती है।

सृष्टि-रचना हेतु यहाँ माया, कला, राग और अविद्यादि कंचुक संश्लिष्ट होते हैं। कंचुक ज्ञान-मय चैतन्य को नष्ट कर विश्व को द्वन्द्वज उपाधियों के वशीभूत कर देता है। 'अहम्' पुरुष-तत्व के रूप में और 'इदम्' प्रकृति के रूप में प्रकट होकर सब एक-दूसरे को अपने से पृथक् समझने लगते हैं। विश्व की प्रत्येक वस्तु मूलतः पुरुष होते हुए ग्राहक और ग्राह्य-भाव से ग्राहक पुरुष = अहं और ग्राह्य प्रकृति = इदम् के रूप में हो जाती है। इस प्रकार लिङ्ग-शरीर की वास्तविक कर्म-भूमि प्रस्तुत हो जाती है।

बहिर्दशार-चक्र के उत्तर और दक्षिण-भाग में चार मर्म-स्थान हैं। भेदन करनेवाली तीन रेखाओं के संयोग को ही 'मर्म' कहते हैं। चार त्रिकोण-रूपी ये मर्म विश्व-व्यापी चतुरस्र प्रकृति, अहङ्कार, बुद्धि और मन के द्योतक हैं। महा-शक्ति की सूक्ष्म लीला इन्हीं चार मूल विन्दुओं, दश अन्तः रूपी इन्द्रियों एवं दश बाह्य-रूपी इन्द्रिय-विषयों द्वारा स्थूलाकार-रूप ग्रहण कर लेती है। ग्राहक-ग्राह्य-भाव से उक्त २४ तत्व सूर्य की बारह कलायें—१ तपिनी, २ तापिनी, ३ धूम्रा, ४ मरीचि, ५ ज्वालिनी, ६ रुचि, ७ सुषुम्ना, ८ भोगदा, ९ विश्वा १० बोधिनी, ११ धारिणी और १२ क्षमा बनकर महा-शक्ति की लीला को स्थूल-रूप देती हैं।

मातृका-सृष्टि के अनुसार भी 'प, फ, ब, भ' चार मातृका - मन्त्र चार मूल विन्दु १ प्रकृति, २ अहङ्कार, ३ बुद्धि, ४ मन हैं। अन्तर्दशार में दश इन्द्रिय-रूपी 'ट-वर्ग' तथा 'त-वर्ग' और बहिर्दशार में

दश इन्द्रिय-विषय रूपी 'क-वर्ग' तथा 'च-वर्ग' संश्लिष्ट हैं। इन चौबीस अक्षरों तथा पहले वर्णित दश मूल अक्षरों—(शिव, जीव, शिव-तत्व के ४ घटक तथा जीव-तत्व के ४ घटक) य, र, ल, व, श, ष, स, ह, क्ष और म के द्वारा मातृका-सृष्टि के व्यञ्जनों का पूर्ण प्रादुर्भाव हो जाता है।

११ चतुर्दशार

लिङ्ग-शरीर की वास्तविक कर्म-भूमि प्रस्तुत हो जाने के बाद महाशक्ति मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार व दश इन्द्रियों से युक्त पिण्डीकरण और स्थूलीकरण के लिए चौदह शक्तियों के रूप में प्रगट होती है। चतुर्दशार के चौदह कोण इन्हीं चौदह शक्तियों के प्रतीक हैं। कामेश्वर-कामेश्वरी-रूप तेज-युग्म चतुर्दशार में पूजा जाता है। ये चौदह शक्तियाँ इस प्रकार हैं—१ सर्व-संक्षोभिणी, २ सर्व-विद्राविणी, ३ सर्वाकर्षिणी, ४ सर्वाह्लादन-कारिणी, ५ सर्व-सम्मोहिनी, ६ सर्व-स्तम्भन-कारिणी, ७ सर्व-जृम्भिनी, ८ सर्व-वशङ्करी, ९ सर्व-रञ्जिनी, १० सर्वोन्मादन-रूपिणी, ११ सर्वार्थ-साधिनी, १२ सर्व-सम्पत्-प्रपूरिणी, १३ सर्व-मन्त्र-मयी, १४ सर्व-द्वन्द्व-क्षयङ्करी।

यहाँ तक सम्पूर्ण विश्व जड़-वत् घोर सुषुप्ति में रहता है। इसलिये इसे सुषुप्ति-पुर कहते हैं। यह स्थिति-चक्र तथा 'अं' 'अः' युक्त १६ स्वर-मय है। इसे चान्द्र खण्ड तथा प्रमेय-पुर भी कहते हैं। अशुद्ध-तत्वान्तर्गत यह आत्म-तत्व है। इसमें बुद्धि-तत्व से लेकर पृथिवी-तत्व तक तेइस तत्व हैं तथा ब्रह्मा से लेकर समस्त बद्ध जीव सकल-रूप में हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जो कुछ बाहर है, वह सब भीतर का ही है। मायावी सृष्टि को अनात्म समझ लेना एक बड़ी भूल है। माया के वशीभूत होकर भेद-बुद्धि-वश प्रत्येक आत्मा इस महा-माया-मय विश्व में अन्य सबको पृथक्-पृथक् देखती है, पृथक् सत्ता रखती है। वास्तव में आत्मा आकृति, देश-काल से शून्य होती हुई भी एक-रस, एक-प्रकाश से विश्व-व्यापिनी है। उसी का प्रपञ्च साकार-रूप से अनन्त रूप में व्याप्त होता है।

१२ अष्ट-दल और षोडश-दल

चतुर्दशार-चक्र में ब्रह्मा की दश कलायें विश्व-रचना हेतु उदित होती हैं। इन दश कलाओं के नाम इस प्रकार हैं—१ सृष्टि, २ ऋद्धि, ३ स्मृति, ४ मेधा, ५ कान्ति, ६ लक्ष्मी, ७ द्युति, ८ स्थिरा, ९ स्थिति और १० सिद्धि। चतुर्दश-भुवनात्मक महामाया चौदह त्रिकोण-विन्दुओं में विभक्त होकर चतुर्दश शक्तियों के रूप में पिण्डीकरण की चौदह मुख्य नाड़ियों का संचार करती है—१ अलम्बुषा, २ कुहू, ३ विश्वोदरी, ४ वरुणा, ५ हस्ति-जिह्वा, ६ यशस्विनी ७ अश्विनी, ८ गान्धारी, ९ पूषा, १० शंखिनी, ११ सरस्वती, १२ इडा, १३ पिङ्गला और १४ सुषुम्ना। पिण्ड की पूर्ण क्रिया-शीलता के लिए इन चौदह नाड़ियों से इनकी शाखायें बहत्तर हजार नाड़ियों के रूप में फैलती हैं।

सम्पूर्ण श्री-चक्र विन्दु-रूप है। महा-शक्ति द्वारा विन्दु से चतुर्दशार तक की कल्पना होती है। चतुर्दशार तक अनुस्वार-विसर्ग (अं–अः) तक की पूर्ण मातृका-सृष्टि प्रादुर्भूत होती है। अष्ट-दल द्वारा विसर्ग का बहिर्भाव प्रारम्भ होता है। कामेश्वर-कामेश्वरी-रूप तेज-युग्म बुद्धि के आठ भेदों—१ वचन, २ आदान, ३ गमन, ४ विसर्ग, ५ आनन्द, ६ हान, ७ उपेक्षा, ८ उपादान—की अधिष्ठातृ अष्ट-शक्तियों के रूप में रूपान्तरित हो जाता है। ये अष्ट-शक्तियाँ इस प्रकार हैं—१ अनङ्ग-कुसुमा, २ अनङ्ग-मेखला,

अनङ्ग-मदना, ४ अनङ्ग-मदनातुरा, ५ अनङ्ग-रेखा, ६ अनङ्ग-वेगिनी, ७ अनङ्गांकुशा और ८ अनङ्ग-मालिनी।

षोडशी-दल-कमल में आते ही महा-शक्ति अपनी अनेक शक्तियों से युक्त होकर भौतिक तत्वों का आविर्भाव करती हुई सारे विश्व को साकार स्थूल रूप में परिणत कर देती है। इस मूल सत्ता के आधार पर विश्व के कारण-लिङ्ग और स्थूल देह का निर्माण होता है तथा अन्त में जीव और ईश्वर का साम्य पूर्ण रूप से भङ्ग होकर सृष्टि-व्यापार प्रारम्भ होता है।

इस प्रकार षोडश-दल विश्वाधार श्री-चक्र का अन्तिम रूपान्तरण है। यहाँ पर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा, घ्राण, हाथ, पैर, पायु, उपस्थ और मनोविकार प्रगट हो जाते हैं तथा महा-शक्ति की काम-कला और शृङ्गार-कला द्वारा इस अण्डाकार विश्व और उसमें जो कुछ है, सबका जन्म हो जाता है। षोडश अवयवों की प्रकाशक शक्तियाँ, जो महा-शक्ति से प्रकट होकर विश्व में व्याप्त हो जाती हैं, निम्न प्रकार हैं—

१ कामाकर्षिणी, २ बुद्ध्याकर्षिणी, ३ अहङ्काराकर्षिणी, ४ शब्दाकर्षिणी, ५ स्पर्शाकर्षिणी, ६ रूपाकर्षिणी, ७ रसाकर्षिणी, ८ गन्धाकर्षिणी, ९ चित्ताकर्षिणी, १० धैर्याकर्षिणी, ११ स्मृत्याकर्षिणी, १२ नामाकर्षिणी, १३ बीजाकर्षिणी, १४ आत्माकर्षिणी, १५ अमृताकर्षिणी तथा १६ शरीराकर्षिणी।

ये सब शक्तियाँ अपने-अपने विन्दु से विश्व-व्यापी होकर सृष्टि-स्थिति के सम्बन्ध में अपने गुणों के अनुसार सदैव कार्य करती रहती हैं और महा-शक्ति के अमृत-प्रवाह से सारी विश्व-चेतना स्थूल रूप से जागकर विश्व-व्यापार प्रारम्भ करती है।

१४ भूपुर

षोडश-दल कमल के बाहर चार वृत्तों से परे तडाग-सदृश स्थल ऊर्ध्व और अधः से उक्त चार दिशायें हैं। इनकी सीमा के लिये त्रि-रेखाओं से युक्त 'भूपुर' अर्थात् चतुरस्र है। यह चतुरस्र चौदह लोकों की सीमा है। विश्व और उसके भीतर जो कुछ है, वह सब स्पष्ट, साकार और स्थूल रूप में एक दूसरे से पृथक् भाव में 'भूपुर' के भीतर विद्यमान है। छत्तीस तत्वों से युक्त त्रिखण्डात्मक विश्व स्थूल रूप से यहाँ प्रगट होता है, जो उपर्युक्त वर्णन की दृष्टि से आदि-शक्ति के विकास के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

तन्त्र (मातृका - चक्र-विवेक) में 'भूपुर' को श्रीगङ्गा - यमुना - सङ्गम - रूप तीर्थराज प्रयाग कहा गया है—

'तस्माच्चतुष्पदमिदं चतुरस्र-विम्बं, चिच्चैत्य-निर्जस्सरिद्-यमुना-प्रयागः।'

इस तीर्थ-राज में चित्-चैत्य-रूपी दो नदियों का सङ्गम होता है, जिनमें से एक श्वेत-वर्णा है, दूसरी कृष्ण-वर्णा। सारांश यह है कि भूपुर जड़ और चेतन तथा शिव और जीव दोनों की समष्टि है। निराकार, निष्कल, शून्यवत् ब्रह्म में लीन समस्त विश्व के उद्भव हेतु महा-शक्ति का यह जागृतिक परिणाम है। महाशक्ति यहाँ ब्रह्म-लीन विश्व को साकार और स्थूल रूप में प्रस्तुत कर अपने विशुद्ध प्रकाश को अन्तर्लीन कर लेती है। यहीं आदि-शक्ति का लय होता है और यहीं से आदि-शक्ति का उद्भव होता है, जिसका वर्णन आगे किया जा रहा है।

१५ आवरणात्मक मनोवृत्तियों के उच्छेदन का निरूपक—'श्री-चक्र'

सृष्टि - क्रम के अनुसार 'श्री-चक्र' नौ चक्रों से बना हुआ है । ये नौ चक्र विन्दु - चक्र से प्रारम्भ होकर भूपुर में समाप्त हो जाते हैं । ऊपर इसका संक्षिप्त वर्णन दिया जा चुका है ।

संहार-क्रम के अनुसार 'श्री-चक्र' भूपुर से लेकर विन्दु-पर्यन्त जीव की जाग्रत् अवस्था से लेकर मोक्ष तक की अनेक दशाओं का वर्णन करता है । अतएव इस चक्र में पूजन करने से सभी बन्धनों का उच्छेदन होकर अन्त में विन्दु-रूपी सविकल्प-समाधि की प्राप्ति होती है ।

संहार-क्रम के अनुसार 'श्री-चक्र' केवल मन है, जो शुद्ध सत्व की प्रधानता लिये हैं । 'श्री-चक्र' का प्रत्येक चक्र (आवरण) और चक्र-शक्तियाँ (आवरण-देवता) संहार-क्रम के विवरण के अनुरूप क्रमशः मानसिक दशाओं एवं मन की वृत्तियों का निरूपण करती है ।

जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति—इन तीन अवस्थाओं का निरूपण करनेवाले प्रथम तीन चक्रों (१ भूपुर, २ षोडश-दल, ३ अष्ट-दल) का अनुभव साधारणतया शुद्ध-हृदय वाले मुमुक्षु पुरुष ही नहीं, अपितु अशुद्ध-मानस वाले सामान्य मनुष्य भी करते हैं । पूर्व कर्मों का फल इन तीन अवस्थाओं में भोगना पड़ता है । अतः सब व्यक्तियों को सम-रूप से इन अवस्थाओं का भोग करना पड़ता है । ये अवस्थायें अज्ञान की अवस्थायें कहलाती हैं । जीव अपने पूर्व-कर्मों का भोग जाग्रत् और स्वप्नावस्था में भोगता है और सुषुप्त्यवस्था में पहुंच कर कुछ समय के लिये अचेतन अवस्था में ब्रह्मानन्द का आस्वादन करता है, किन्तु पुनः अवशिष्ट कर्म-भोग के कारण उन्हीं अवस्थाओं में लौट आता है । इस प्रकार तीन अवस्थाओं में जीव, जब तक मृत्यु नहीं होती, प्रतिदिन भ्रमण करता रहता है । वह बार-बार जन्म लेता है और मरता है, उसके जीवन का क्रम चलता ही रहता है ।

जीवन-मरण के उक्त चक्र में घूमता हुआ कोई विशेष जीव पूर्व - पुण्य के प्रभाव से जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति की चक्र-गति से अलग होने की इच्छा करता हुआ यह अनुभव करता है कि इस संसार में उसको और संसार को पैदा करनेवाला कोई ईश्वर अवश्य है । अतएव वह अपने आप मूलभूत सम्बन्ध की खोज करने की ओर आकर्षित होता है । ईश्वर और मुझ में क्या सम्बन्ध है ? परमेश्वर कहाँ रहता है ? विश्व और परमेश्वरी में क्या सम्बन्ध है ? इत्यादि प्रश्न करने लगता है । चतुर्थ चक्र (चतुर्दशार) इसी प्रकार के व्यक्ति-विशेष की मानसिक दशा का निरूपण करता है ।

उपर्युक्त प्रश्नों के समाधान के लिए गुरु का सहारा लेना आवश्यक होता है । अतः पाँचवाँ चक्र—बहिर्दशार गुरु की खोज और उसके पास पहुँचने की दृढ़ अभिलाषा रखनेवाले मुमुक्षु की मानसिक वृत्ति का प्रतिपादन करता है ।

षष्ठ चक्र (अन्तर्दशार) मुमुक्षु की उस मानसिक दशा को स्पष्ट करता है, जब वह गुरु-कृपा के फल-स्वरूप जीव तथा ब्रह्म की एकता को प्रतिपादित करनेवाले महा-वाक्यों का उपदेश ग्रहण कर लेता है ।

सप्तम, अष्टम और नवम चक्र (अष्टार, त्रिकोण और विन्दु) यथा-क्रम सत्व-गुण की अधिकता से युक्त, मनन-निदिध्यासन और सविकल्प समाधि में निमग्न मुमुक्षु की मानसिक दशाओं के सूचक हैं ।

प्रथम आवरण—भूपुर

प्रथमावरण प्रथम-चक्र की प्रकृति पृथिवी-वीज 'लं' है। यह पृथिवी-वीज पञ्च-भूतों और उनके कार्यों का प्रतिनिधि है। यह जाग्रद् अवस्था का निरूपण करता है, क्योंकि इस अवस्था में स्थूल शरीर अथवा अन्न-मय कोष, मन और इन्द्रियाँ तथा इन्द्रिय-सम्पर्क से उत्पन्न होनेवाले सुख और दुःखों के साथ इन्द्रिय-विषय अपने पूर्ण व्यवहार में रहते हैं। इस अवस्था का अभिमानो जीवन 'विश्व' माना गया है। वह स्थूल पदार्थों का भोक्ता है अर्थात् बाह्य जगत् का उपभोग करनेवाला है। ज्ञातृ, ज्ञान और ज्ञेय की स्थूल त्रिपुटी इस अवस्था में प्रारम्भिकता से कार्य करती है।

इस चक्र की योगिनी का नाम 'प्रकट-योगिनी' है। 'त्रिपुर-चक्रेश्वरी' और 'प्रकट-योगिनी' नामों से त्रिपुरा का अर्थ त्रिपुटी है—'पुर-त्रयं प्रमाण-प्रमेय-प्रमातृ-रूपं त्रिपुटीत्वेन प्रसिद्धम्।' 'प्रकट-योगिनी' से तात्पर्य है प्रत्यक्ष योगिनी।

आवरण देवता—इस चक्र के आवरण-देवताओं की तीन श्रेणियाँ हैं। प्रत्येक चतुरस्र के लिये एक श्रेणी है।

(१) पहले चतुरस्र में अणिमा, लघिमा आदि दश सिद्धियाँ हैं। इनमें पांच ज्ञानेन्द्रियों, दो कर्मेन्द्रियों (मल-मूत्रेन्द्रियों) तथा अनुकूल और प्रतिकूल और उपेक्षा इन तीन मानसिक वृत्तियों का निरूपण होता है। अर्थात् उक्त दश सिद्धियाँ सब इन्द्रियों और तीन मानसिक वृत्तियों का निरूपण करती हैं।

(२) दूसरे चतुरस्र के देवता ब्राह्मी, माहेश्वरी आदि आठ देव-मातायें हैं, जो स्थूल शरीर अथवा जीव के उपभोग के निवास-स्थान को बनानेवाली आठ धातुओं अथवा आवश्यक अङ्ग-घटकों—१ चर्म, २ रक्त ३ मांस, ४ मज्जा, ५ अस्थि, ६ वसा, ७ वीर्य और ८ शक्ति का निरूपण करती हैं।

(३) तीसरे चक्र के देवता सर्व-संक्षोभिणी, सर्व-विद्राविणी आदि दश मुद्रायें हैं, जो सांसारिक आनन्दों की मूर्तियां हैं। ये आनन्द पहले चतुरस्र में वर्णित पदार्थों के उपभोग के अवसर पर पैदा होते हैं।

उपासक का यह दृढ़ ज्ञान कि जाग्रद् अवस्था में जाने गये पदार्थों का मूल-तत्व 'चित्-शक्ति' ही उपासक से भिन्न नहीं है, अपितु मन भी उससे भिन्न है। मन ही 'ज्ञान' और 'ज्ञाता' दोनों का साधन है। प्रथम आवरण के विन्दु-तर्पण का यही महत्व है। 'त्रिपुटी' के नष्ट होने पर उपासक आत्मिक मोक्ष को प्राप्त कर लेगा। उसे समझ लेना चाहिए कि प्रकट-योगिनियाँ अथवा चित्-शक्ति परस्पर-विरोधी स्थूल इन्द्रिय-विषयों से अपरिमित पर-देवता की किरणें हैं।

द्वितीय आवरण—षोडश-दल-पद्म

इस चक्र की प्रकृति चन्द्र-बीज 'सं' है। यह चक्र मन और उसकी वृत्तियों का अथवा 'त्रिपुटी' का निरूपण करता है। मन का अधिष्ठातृ-देवता चन्द्रमा है। अतः इस चक्र से मनुष्य की स्वप्नावस्था का बोध होता है, जिसमें मन की ही प्रधानता होती है। स्वप्नावस्था में मन की स्थिति कण्ठ अथवा चन्द्रमा के स्थान में होती है। विशुद्धि-चक्र में स्थित षोडश-दल-कमल रूपवाले इस चक्र का नाम 'सर्वाशा परिपूरक' चक्र है अर्थात् यह सब इच्छाओं को पूर्ण करनेवाला है।

जाग्रद् अवस्था में जीव जो भी इच्छाएँ करता है, उन्हीं का अनुभव वह स्वप्नावस्था में करता है। इस अबस्था का अभिमानी जीव 'तैजस पुरुष' के नाम से प्रसिद्ध है। इसका वर्णन शास्त्रों में इस

प्रकार किया गया है कि वह 'प्रविविक्त-भुक्' है अर्थात् प्राण-मय, मनो-मय और विज्ञान-मय कोषों से निर्मित सूक्ष्म-शरीर में गुप्त और अत्यन्त सूक्ष्म अनुभवों का उपभोग करनेवाला है। दूसरे शब्दों में वासना-मय या संस्कार-जन्य फलों का भोगनेवाला है। इसलिये इस चक्र की 'चित् - शक्ति' का नाम 'गुप्त-योगिनी' है।

आवरण-देवता—कामाकर्षिणी, बुद्धयाकर्षिणी आदि षोडश शक्तियाँ। ये शक्तियाँ मन और प्राण के स्पन्दन से उत्पन्न मनोवृत्तियों की प्रकृति-स्वरूपा हैं।

तृतीय आवरण—अष्ट-दल-पद्म

इस चक्र की प्रकृति शिव-वीज 'हं' है। इससे रुद्र के संहार-कार्य महा-प्रलय का द्योतन होता है। जीव द्वारा प्रतिदिन उपभुक्त जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति नामक तीन अवस्थाओं में से 'सुषुप्ति' (गाढ़-निद्रा) अवस्था ही प्रलय है। 'सुषुप्ति' को दिन-प्रलय माना गया है। इस अवस्था में 'प्रमेय' अर्थात् विषयाश्रित (पदार्थ-निष्ठ) जगत् और 'प्रमाण' अर्थात् ज्ञान की शक्ति रखनेवाला मन दोनों विलीन (प्रसुप्त) रहते हैं और केवल 'प्रमाता' ही कर्म-शील रहता है।

इस अवस्था का अभिमानी जीव 'प्राज्ञ पुरुष' है, जो स्वयं अपने आनन्द को भोगनेवाला है और कारण-शरीर या आनन्द-मय कोष के साथ रहता है।

आवरण देवता—अनङ्ग-कुसुमा, अनङ्ग-मेखला आदि आठ शक्तियाँ। ये सूक्ष्म-पुर्यष्टक का निरूपण करती हैं—१ प्रकृति, २ महत्-तत्व, ३ अहङ्कार, ४ पञ्च-तन्मात्रा, ५ पञ्च-भूत, ६ दशेन्द्रिय, ७ अन्तःकरण, ८ पुरुष।

सुषुप्त्यवस्था में पुरुष अज्ञान-वश प्रसुप्त रहता है। यही अज्ञान सुषुप्ति का कारण है। अनङ्ग-कुसुमादि शक्तियाँ बिना शरीर की हैं अर्थात् 'गुप्त-तर'—अत्यन्त छिपी हुई हैं। इसी से ये शक्तियाँ 'गुप्त-तर योगिनी' कहलाती हैं।

इस आवरण की चक्रेश्वरी 'त्रिपुर-सुन्दरी' हैं। वे स्वयं-प्रकाश हैं और तीनों अवस्थाओं में प्रकाशित रहती हैं। ज्ञेय—ज्ञान के योग्य पदार्थों को वे प्रकाशित करती हैं और जाग्रत् एवं स्वप्नावस्थाओं की चिन्ता से जर्जरित जीव को सुषुप्त्यवस्था में सहजानन्द का उपभोग प्रदान करती हैं।

सुषुप्त्यवस्था में अज्ञान के साथ सहजानन्द का उपभोग होता है, जब कि अन्तर और बाह्य जगत् स्थूल और सूक्ष्म को अन्दर खींचकर अपने कारण—आत्मा में लीन हो जाता है। 'मैं सुख की नींद में सोया हुआ था और मुझे ज्ञात नहीं कि इस बीच क्या-क्या हुआ'—यह अनुभूति सर्व-साधारण को होती है। सर्वाकर्षिणी—सबका आकर्षण करनेवाली मुद्रा इस अनुभूति का निरूपण करती है और महिमा-सिद्धि इस बात का निरूपण करती है कि जीव की महिमा प्रज्ञान-घन है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि वाह्य जगत् के नाम और रूपों का अनुभव होने पर मनः-कल्पित अध्यास को दूर करनेवाली सच्चिदानन्द-स्वरूपा चित्-शक्ति का सतत ध्यान करना ही 'अभ्यास' या 'आवृत्ति' है। 'आवृत्ति'-शब्द आवरण या आच्छादन का पर्याय है क्योंकि आवृत्ति या असकृत अभ्यास की आवश्यकता तभी होती है, जब हमारा अन्वेष्य विषय 'पिहित' या आच्छादित हो। जब तक आवरण दूर न हो जाय, तब तक बार-बार अभ्यास की आवश्यकता बनी रहती है।

ब्रह्म-सूत्र, ४-१-१ के अनुसार ब्रह्म-विचार पुनः-पुनः करना चाहिए और यह ध्यान देने की बात है कि आवरण-पूजा द्वारा ब्रह्म-विचार का ही बारम्बार अभ्यास होता है।

चतुर्थ आवरण—चतुर्दश कोण

इस आवरण की प्रकृति माया-वीज 'ई' है। इसी का नाम 'काम-कला' है। विश्व के कारण, माया-विशिष्ट ईश्वर का निरूपण यह बीज करता है। इस चक्र से ईश्वर-विचार में तत्पर मन का तथा इसके देवताओं से मन की वृत्तियों का क्रमशः बोध होता है।

इस चक्र का नाम है 'सर्व-सौभाग्य-दायक'—सब प्रकार के सौभाग्य देनेवाला, क्योंकि यह 'त्रिपुटी'—पुर-त्रय के कारण उत्पन्न भेद-भावना और दुःखों का विध्वंस कर अखण्डैकता का ज्ञान प्रदान करनेवाले परमेश्वर की प्रकृति का द्योतक है।

इस चक्र की योगिनियों का नाम 'सम्प्रदाय-योगिनी' है। परमेश्वर स्वय अथवा गुरु-रूप में उपस्थित होकर मुमुक्षु को ज्ञान प्रदान करता है। 'सम्प्रदाय' अर्थात् सर्वोत्कृष्ट वस्तु का देनेवाला। साम्प्रदायिक ज्ञान को देनेवाली गुरु-श्रेणी का अग्रणी होने से ही परमेश्वर 'जगद्-गुरु' भी है।

वह सर्व-शक्ति-मान्, विश्व का कारण तथा उद्धर्ता—मोक्ष-प्रद पुराण-पुरुष परमेश्वर चतुर्दश-भुवनों से बने हुए समस्त विश्व में व्याप्त है। अतः यह चतुर्थ चक्र १४ भुवनों का निरूपण करता है। उसके १४ त्रिकोणों में से प्रत्येक त्रिकोण परमेश्वर के विषय में एक प्रकार की जिज्ञासा को सूचित करता है।

श्रुति-स्मृति आदि में विश्व के कारण परमात्मा के विषय में पूर्ण विचार किया गया है। ब्रह्म-सूत्र के प्रथम अध्याय में १४ अधिकरणों का वर्णन है—

१ **आकाशाधिकरण** : परमेश्वर का वर्णन किया गया है कि वही आकाश, २ **प्राणाधिकरण** : वायु, ३ **ज्योतिर्दर्शनाधिकरण** : तेज, ४ **आनन्द-मायाधिकरण** : रस, ५ **इन्द्र-प्राणाधिकरण (प्रतदनाधिकरण)** : प्रज्ञान या मुख्य प्राण, ६ **वैश्वानराधिकरण** : त्रैलोक्य-शरीरी या जगत्-त्रय शरीरवाला, ७ **द्यु-भावाधिकरण** : वह स्तर-फलक, जिसमें भूमि, अन्तरिक्ष और स्वर्ग अविद्या से अधिष्ठित हैं, ८ **सर्वत्र प्रसिद्धाधिकरण** : मनो-बुद्धचादि सब, ९ **अत्राधिकरण** : सर्व-संहारक, १० **गुह्याधिकरण—दहराधिकरण** : दहराकाश, ११ **अन्तराधिकरण** : असङ्गत्वादि धर्म-संयुक्त, १२ **अन्तर्यामाधिकरण** : सर्व-जगन्नियन्ता, १३ **अदृश्यत्वाधिकरण** : अदृश्य, अनिर्देश्य इत्यादि, १० **भूमाधिकरण** : सर्व-व्यापक, अद्वितीय परमात्मा।

इस प्रकार सर्व-व्यापी, सर्वज्ञ, समस्त विश्व के उत्पादक और नियन्ता परमात्मा का वर्णन किया गया है कि वह 'उपास्य'—उपासना करने योग्य, 'ध्येय'—ध्यान करने के योग्य और 'ज्ञेय'—जानने के योग्य है।

आवरण-देवता—इस चक्र की सर्व-संक्षोभिणी, सर्व-विद्राविणी आदि १४ देवता मन की वृत्तियाँ हैं। ये मानसिक वृत्तियाँ ही परमेश्वर की १४ आकृतियाँ हैं।

इस आवरण की चक्रेश्वरी का नाम है 'त्रिपुर-वासिनी'। यह पहले बता चुके हैं कि प्रमाण, प्रमेय और प्रमाता—इस 'त्रिक' को ही 'त्रिपुर' कहते हैं। 'त्रिपुटी' के संसर्ग से भेद-भावना का ज्ञान पैदा होता है और उसी के फल-स्वरूप भय और बाधायें उत्पन्न होती हैं। 'वासी' कुठारिका, कुल्हाड़ी या बसूली को कहते हैं, जिससे लकड़ी काटी-छीली जाती है। अतः 'वासिनी' का अर्थ भी कुठारिका के समान काटनेवाली हुआ। इस प्रकार 'त्रिपुर-वासिनी' का अर्थ है 'त्रिपुटी से उत्पन्न भय और बाधाओं की नाश करनेवाली।'

इस चक्र में 'ईशित्व-सिद्धि' और 'सर्ववशङ्करी मुद्रा' की पूजा होती है, जिससे ईश्वर का ध्यान भली-भाँति प्रतिष्ठित होता है। निर्विशेष निर्गुण ब्रह्म का संसार का कारण होना तटस्थ लक्षण है। इसका कारण शुद्ध-सत्व माया को मध्यस्थता या मध्य-वर्तित्व है।

पञ्चम आवरण—बहिर्दशार

चतुर्थ आवरण में जिज्ञासा है कि ईश्वर की प्रकृति किस प्रकार की है? यह अटल सिद्धान्त है कि ईश्वर-विषयक जिज्ञासा तथा उसकी यथोचित उपासना से ईश्वर स्वयं शिष्यों के कल्याण के लिए गुरु-रूप में प्रकट होता है क्योंकि ईश्वर की वास्तविक प्रकृति का ज्ञान गुरु की कृपा के बिना नहीं हो सकता। ईश्वर की ही कृपा से सद्-गुरु की प्राप्ति होती है। अतः यह चक्र गुरु-प्राप्ति का निरूपण करता है।

इस चक्र का नाम 'सर्वार्थ-साधक' है क्योंकि यह मोक्ष-नामक परम पुरुषार्थ का देनेवाला है। जीवन के दुःखों से छटकारा दिलानेवाला सुखोत्पादक 'मोक्ष' केवल सत्य-ज्ञान द्वारा ही मिलता है और सत्य-ज्ञान की प्राप्ति गुरु के उपदेश के बिना हो नहीं सकती। अज्ञान को दूर करनेवाले गुरु ही हैं।

मुमुक्षु पुरुष सर्व-गुण-सम्पन्न और शास्त्र-निष्णात होने पर भी गुरूपदेश के बिना आत्मा और ब्रह्म की एकता का अनुभव नहीं कर सकता। अतः गुरु के समीप निवास कर उनकी आज्ञा का पालन करना आवश्यक है।

'बन्ध किसे कहते हैं? मोक्ष की प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है? विद्या और अविद्या के लक्षण क्या हैं?' इत्यादि प्रश्नों का समाधान गुरु से समझने के साथ ही मुमुक्षु को आप्त, अङ्ग, स्थान और सद्-भाव के भेद से चतुर्विध-सेवा द्वारा गुरुदेव को सन्तुष्ट करना चाहिए, जिससे वे उस पर अनुग्रह कर सत्य-ज्ञान का उपदेश करेंगे। सेवा के उक्त चार भेद का विवरण इस प्रकार है—

१ **आप्त** : गुरुदेव के अनुकूल कार्य करना, २ **अङ्ग** : पैर दाबना आदि शारीरिक सेवा, ३ **स्थान** : गुरु को वस्तुओं की निगरानी (रक्षा) करना और ४ **सद्-भाव** : गुरुदेव को पर-ब्रह्म-मानकर उनका ध्यान करना।

इस चक्र की चक्रेश्वरी 'त्रिपुटा-श्री' कहाती हैं क्योंकि इस आवरण में उस मानसिक दशा की प्राप्ति होती है, जिसमें 'त्रिपुटी' आत्मा में विलीन हो जाती है।

'कुलोत्तीर्ण-योगिनी' नाम में 'कुल'-शब्द का अर्थ है 'ज्ञान का समूह' और 'उत्तीर्ण' का अर्थ है वृद्धि। इस प्रकार 'ज्ञान के समूह की वृद्धि' से आशय है। योग्य शिष्यों के सम्मिलित होने से कुल की वृद्धि होती है। अतः 'कुलोत्तीर्ण' अथवा कुल-कौलिक-योगिनी गुरु के समीप शिष्यों की उपस्थिति तथा गुरु द्वारा उनकी स्वीकृति का निरूपण करती है।

इस आवरण के दश देवता गुरु-कृपा से प्राप्त लाभ को दर्शाते हैं। यथा—

१ **सर्व-सिद्धि-प्रदा** : आत्म-ज्ञान की स्पष्ट प्राप्ति, २ **सर्व-सम्पत्-प्रदा** : निरीहता की प्राप्ति, ३ **सर्व-प्रियङ्करी** : शाश्वत आनन्द, ४ **सर्व-मङ्गल-कारिणी** : सर्वत्र शिवाऽनुभव की योग्यता, ५ **सर्व-काम-प्रदा** : महदानन्द की प्राप्ति, ६ **सर्व-दुःख-विमोचिनी** : सर्व-बाधाओं से विनिर्मुक्ति, ७ **सर्व-मृत्यु-प्रशमनी** : अमरत्व की प्राप्ति, ८ **सर्व-विघ्न-निवारिणी** : भेद-भावना का निर्मूलन, ९ **सर्वाङ्ग-सुन्दरी** : सब प्रकार के अध्यासों में अधिष्ठान का ज्ञान, १० **सर्व-सौभाग्य-दायिनी** : 'शिवोऽहं' इस अनुभव की प्राप्ति।

'वशित्व-सिद्धि' वह शक्ति है, जो नाम और रूप के जगत् को आत्मा में लीन कर देती है। यह शक्ति दीक्षा-संस्कार के बिना प्राप्त नहीं होती।

'सर्वोन्मादिनी मुद्रा' मोक्ष की अत्यन्ताभिलाषा की सूचक है। जिस प्रकार मकान में आग लगने पर व्यक्ति अपने शरीर की रक्षा के लिए, स्त्री-पुत्रों की कुछ भी परवा न कर, भागकर अपने प्राण बचाता है, उसी प्रकार मोक्षाभिलाषी पुरुष सांसारिक दु:खों से बचने के लिए अपनी इच्छाओं को त्याग कर गुरु का अन्वेषण करता है।

षष्ठ आवरण—अन्तर्दशार

पञ्चम आवरण में गुरूपसादन और गुरु-सेवा का वर्णन है और षष्ठ आवरण के निकट बैठकर श्रद्धा तथा भक्तिपूर्वक उनके उपदेश को सुनने—'श्रवण' का निरूपण करता है।

गुरु के उपदेश का तत्व है जीव और ब्रह्म की एकता का अनुशासन करनेवाला महा-वाक्य—**'तत्त्वमसि'**। 'श्रवण' करने से शिष्य के मन में यह दृढ़ विश्वास उत्पन्न हो जाता है कि समस्त वेदान्त-शास्त्र का लक्ष्य है जीव और ब्रह्म की एकता अथवा निर्भयावस्था की प्राप्ति।

इस चक्र का नाम है 'सर्व-रक्षा-कर' अर्थात् सबकी रक्षा करनेवाला। रक्षा-काण्ड के समान 'श्रवण' शिक्षा को द्वैत-रूपी राक्षस के चंगुल से छुड़ाकर अपने भीतर बसा देता है और उसके द्वारा पकड़े जाने के भय से शिष्य की रक्षा करता है।

इस चक्र की योगिनियाँ 'निगर्भ-योगिनी' कहलाती हैं। 'निगर्भ' का अर्थ है 'प्रत्यगत्मा' अर्थात् अत्यन्त गुप्त स्थान में रहनेवाला। हृदय की गुफा पञ्च-कोशों से भी परे है और 'प्रत्यगात्मा' उसी में प्रकाशित होता है। जिस मानसिक वृत्ति द्वारा आत्मा का ज्ञान होता है, वह 'निगर्भ-योगिनी' कहलाती है। अथवा ब्रह्म स्वयं 'निगर्भ' है। वह अज्ञानियों के लिए गुप्त है क्योंकि वह 'आवरण' और 'विक्षेप' नामक दो प्रकार के अज्ञान से आवृत है। आच्छादन के साथ रहनेवाली मानसिक वृत्ति ही 'निगर्भ-योगिनी' है।

इस चक्र की चक्रेश्वरी का नाम त्रिपुर-मालिनी है क्योंकि वह 'त्रिपुर' या 'त्रिपुटी' की रक्षा करती है। रक्षा का अर्थ है अपने आश्रय में लेकर सहायता देना। आत्मा का अस्तित्व 'त्रिपुटी' की उपस्थिति का सहायक है। भेद-भावना-रहित दृष्टिकोण ही 'त्रिपुटी' की अविद्यमानता है। 'त्रिपुटी' ही सब प्रकार की माया का कारण है। उक्त दृष्टिकोण गुरूपदेश बिना नहीं हो सकता।

'प्राकाम्य सिद्धि' अशुद्ध विद्या को दूर कर असंसक्त आत्मा के ज्ञान को प्रदान करती है। अत्यन्त अभीष्ट वस्तु भी 'प्राकाम्य सिद्धि' का अर्थ है—'प्रकर्षेण काम्यं प्राकाम्यम्'। इस संसार में सबकी सबसे अधिक चाहने योग्य वस्तु है 'अखण्ड आनन्द' और उसको प्राप्ति केवल आत्म-ज्ञान के द्वारा हो सकती है।

सप्तम-आवरण—अष्ट-कोण

षष्ठ आवरण में गुरु से महा-वाक्य का श्रवण कर शिष्य को आत्म-ज्ञान अर्थात् **'अहं ब्रह्मास्मि'** (मैं ब्रह्म हूँ) की प्राप्ति होती है किन्तु जो उत्तमाधिकारी नहीं है अर्थात् जिसने विधिवत् पर्याप्त उपासना नहीं की है, वह 'असम्भावना' या संशय और विपरीत भावना—इन दो दोषों से ग्रस्त होकर उक्त आत्म-ज्ञान का लाभ नहीं उठा पाते। ये दोनों दोष 'अभानापादकावरण' अर्थात् 'ब्रह्म का अस्तित्व तो है, परन्तु वह उपलब्ध नहीं होता'—इस प्रकार की बुद्धि के कारण उत्पन्न होते हैं। पहला दोष अर्थात् 'संशय'

तो मनन के द्वारा दूर हो जाता है। गुरु द्वारा उपदिष्ट महा-वाक्य के तात्पर्य पर ऊहापोह और पर्यालोचन आदि पूर्वक विचार करना ही 'मनन' कहलाता है।

सप्तम आवरण द्वारा 'मनन' का ही निरूपण किया गया है। इस आवरण से संशय का उच्छेदन हो जाता है। 'संशय' प्रमाण और प्रमेय की दृष्टि से दो प्रकार का होता है। वेदान्त-साहित्य प्रामाणिक है या नहीं'—इस प्रकार के संशय को 'प्रमाण-गत' संशय कहते हैं। आत्म-प्रमेय और अनात्म-प्रमेय के भेद से प्रमेय-गत संशय द्विविध है, जिनमें से अनात्म-प्रमेय संशय असंख्य प्रकार का होता है। 'आत्म-प्रमेय' संशय भी अनेक प्रकार का है। यथा—

(क) **ब्रह्म और आत्मा की एकता के विषय में**—(१) क्या आत्मा ब्रह्म से भिन्न है या अभिन्न है? (२) यदि आत्मा और ब्रह्म एक ही हैं, तो क्या सदा एक रहते हैं या केवल मोक्ष की दशा में ही एक होते हैं? (३) यदि वे भिन्न नहीं हैं, तो आत्मा में भी क्या आनन्दादि स्वरूप हैं या नहीं हैं? (४) यदि उसमें आनन्दादि हैं, तो क्या वे उसके गुण हैं? या सहज—स्वभाव - जन्य हैं? या उसकी शक्तियाँ हैं?

(ख) **स्वयं आत्मा के विषय में**—(१) क्या आत्मा शरीर आदि से भिन्न है, या अभिन्न है? (२) यदि भिन्न है, तो क्या वह अति सूक्ष्म और अमेय है या मध्यम आकार की है? (३) यदि वह निर्मर्याद है, तो क्या वह कर्त्ता है या अकर्ता? (४) यदि अकर्ता है, तो क्या वह एक है या अनेक है, जो कि परस्पर भिन्न हैं?

(ग) **ईश्वर के विषय में**—(१) क्या ईश्वर कैलास या वैकुण्ठ में निवास करनेवाला प्राणी है? (२) यदि वह अमित और शरीर-रहित है, तो क्या विश्व की सृष्टि करने के लिए उसे परमाणुओं की या उनके समान अन्य पदार्थों की आवश्यकता होती है या केवल इच्छा-मात्र से ही वह विश्व को उत्पन्न करता है? (३) यदि सृष्टि के उत्पादन के लिए और उसे किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं है, तो क्या वह अकेला जगत् का उत्पादक है या वह कर्म-साधक (कर्म-क्षम) और प्रकृति (उपादान-कारण) दोनों ही है? (४) यदि वह कार्य-साधक और प्रकृति दोनों है, तो क्या वही जीवों को उनके कर्मों का फल देनेवाला है, या नहीं है? (५) यदि वह कर्म-फल का देनेवाला है, तो क्या वह अन्याय आदि कलङ्कों से युक्त है या इस प्रकार के दोषों से रहित है?

वेदान्त-साहित्य के अध्ययन और समन्वय से प्रमाण-गत संशय दूर हो जाता है और अविरुद्धता का ज्ञान होने से प्रमेय-गत संशय भी नष्ट हो जाता है। इस प्रकार सभी प्रकार के संशयों को नष्ट करनेवाला यह 'सप्तम आवरण' वेदान्त-शास्त्र की जिज्ञासा का सूचक है।

इस चक्र का नाम है—'सर्व-रोग-हर' क्योंकि यह सभी संशयों को दूर कर सांसारिक दुःखों का उन्मूलन कर देता है।

इस चक्र की 'रहस्य-योगिनियाँ' द्वैत भाव के कारण उत्पन्न संसार से मुक्त करनेवाले स्वयं-प्रकाश निश्चल ज्ञान का निरूपण करती हैं।

चक्रेश्वरी का नाम है 'त्रिपुरा-सिद्धा', जो त्रिपुटी से उत्पन्न सभी संशयों के परे विद्यमान पर-शिव के ध्यान का निरूपण करती है।

इस चक्र की 'युक्ति-सिद्धि' इदन्ता और अहन्ता के बीच के पारस्परिक भेदों से मुक्ति दिलाकर ब्रह्म-सूत्र के 'अत्ता चराचर-ग्रहणात्' सूत्र के अनुसार उन दोनों के मध्य एकता स्थापित करती है।

'सर्व-खेचरी मुद्रा' वह मानसिक वृत्ति है, जो सब प्रकार के संशयों से दूर रहकर सनातन ब्रह्म-स्वरूप का अनुभव करती है।

इस चक्र के आवरण-देवता उपासक की मानसिक वृत्तियाँ हैं। देवता वैदिक श्रुतियों के आकार की हैं। यथा—

१ **वशिनी** : वह मन्त्र-शक्ति, जो यह निश्चय करती है कि सारा जगत् आत्मा से अभिन्न ब्रह्म का ही स्वरूप है अर्थात् ब्रह्म-मय है।

२ **कामेश्वरी** : आत्मा से अभिन्न ब्रह्म के स्वरूप का निरूपण करनेवाली श्रुति।

३ **मोदिनी** : ब्रह्म से अभिन्न के ज्ञान के परिणाम (आत्म-ज्ञान) को प्रकट करनेवाली।

४ **विमला** : अज्ञान के अध्यास पर विजय प्राप्त करनेवाली और चित् का निर्णय करनेवाली।

५ **अरुणा** : जीव और ब्रह्म की एकता घोषित करनेवाली श्रुति।

६ **जयिता** : सत्य की अखण्डैकता का उपदेश देनेवाली श्रुति।

७ **सर्वेश्वरी** : जीवन्मुक्ति का निरूपण करनेवाली श्रुति।

८ **कौलिनी** : विदेह-मुक्ति का वर्णन करनेवाली श्रुति।

ये आठों शक्तियाँ वाग्-देवता हैं, जो शब्द-प्रमाण के निर्माता शास्त्रों का प्रतिपादन करती हैं। ये शक्तियाँ मातृकाओं के स्वरूप या आकार की हैं अर्थात् अक्षर-स्वरूपिणी हैं।

आयुधों का अर्चन

सप्तम आवरण (मनन) के बाद और अष्टम आवरण (निदिध्यासन) के पहले पश्चिम, उत्तर, पूर्व और दक्षिण दिशाओं में क्रमशः वाण, धनुष, पाश और अंकुश इन चारों आयुधों की पूजा की जाती है। स्पष्ट है कि इन आयुधों से 'मनन' का फल प्रकाशित होकर 'निदिध्यासन' में सहायता पहुँचाई जाती है। 'मनन' द्वारा संशय दूर होते हैं, जिससे मन शुद्ध होकर अन्तरालोकन प्रारम्भ करता है और आत्म-साक्षात्कार के योग्य बनता है।

'धनुष' (कोदण्ड) मन, 'पञ्च-वाण' पञ्च-तन्मात्रायें, 'पाश' इच्छा और 'अंकुश' घृणा है।

पाँच ज्ञानेन्द्रियों को नियन्त्रित कर यदि मन में विलीन कर दिया जाय, तो ये बाह्य विषयों से विमुख होकर अन्तर्मुखी हो जायँगी, जिससे आत्म-ज्ञान की प्राप्ति करने में रुचि उत्पन्न होगी और संसार के प्रति घृणा होगी।

निदिध्यासन और समाधि के मार्ग में लय, विक्षेप, कषाय और रसास्वाद—इन चार विघ्नों से बाधा पहुंचती है। आयुधों द्वारा ये विघ्न नष्ट होते हैं। यथा—

१ **अंकुश**—नाम और रूप से बने अनात्म-भाव के प्रति घृणा करना ही अंकुश है। इससे **'लय'** (निद्रा) का नाश होता है।

२ **धनुष**—शुद्ध मन की अन्तर्मुखी वृत्ति। इससे मन में कोई वासना उत्पन्न नहीं होती। फलतः **'विक्षेप'** का उन्मूलन हो जाता है।

३ **पाश**—आत्मा की प्राप्ति की प्रबल इच्छा। इससे अनात्म-विचार का नियन्त्रण होता है। फलतः **'कषाय'** का निवारण होता है।

४ **पञ्च-वाण**—जितेन्द्रियत्व। पञ्च-ज्ञानेन्द्रियाँ शब्दादि अपने विषयों से निवृत्त होकर मन में निमग्न हो जाती हैं। फलतः, 'रसास्वाद' का उन्मूलन हो जाता है।

अष्टमावरण—त्रिकोण

इस आवरण से 'निदिध्यासन' का निरूपण होता है। सांसारिक पदार्थों की ओर झुकी हुई मन की वृत्तियों का उच्छेदन कर आत्म-चिन्तन की ओर उनकी प्रवृत्ति का प्रसार करना 'निदिध्यासन' कहाता है। शुद्ध सत्व से परिपूर्ण मन का दृढ़ता के साथ आत्मा में स्थिरीकरण ही 'निदिध्यासन' है।

'निदिध्यासन' में बड़े प्रयत्न से आत्माकार-वृत्ति का सम्पादन होता है। जिस प्रकार वृक्ष को शाखा तभी तक झुकी रहती है, जब तक वह हाथ द्वारा पकड़ी हुई है। जैसे ही उसे छोड़ा जाता है, वह पुनः पूर्व-अवस्था में आ जाती है और उस पर जो टेढ़ापन हाथ के पकड़ने से आ जाता है, वह तनिक भी नहीं रह जाता। इसी प्रकार 'निदिध्यासन' के बार-बार अभ्यास से मन विपरीत अनात्माकार विचारों की ओर जाना बन्द कर देता है और सर्वदा के लिये आत्माकार बन जाता है।

वासना-क्षय के बिना मनोनाश नहीं होता और मनोनाश हुये बिना तत्व-ज्ञान का होना असम्भव है। तत्व-ज्ञान के बिना वासना का विनाश नहीं होता। अतः इन तीनों का अभ्यास साथ-साथ ही होना चाहिये। इस प्रकार के अभ्यास से ब्रह्म और आत्मा के ऐक्य की प्रत्यक्ष प्राप्ति तत्काल हो जाती है। ब्रह्मात्मैक्य-प्राप्ति में शान्ति, सन्तोष और विचार तथा वैराग्य, उपरति और बोध आवश्यक हैं।

जीव और ब्रह्म की एकता ही 'सर्व-सिद्धि' है। वही सिद्धि इस चक्र में प्राप्त होती है। अतएव इस चक्र का नाम 'सर्व-सिद्धि-प्रद' चक्र है। इस चक्र की चित्-शक्ति अपने अभ्यास के अनुरूप 'अति रहस्य-योगिनी' कही जाती है क्योंकि वह शुद्ध आत्माकार-वृत्ति (उन्नतावस्था को प्राप्त मानसिक वृत्ति) के साथ संश्लिष्ट है।

निदिध्यासन के साथ संयुक्त मानसिक अवस्था स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरों से भी परे है। यथार्थ में यह सर्व-व्यापक एकता का सात्विक अनुभव है। जिस चित्-शक्ति के ऊपर वह अनुभव अध्यासित है, वह इस चक्र की नायिका 'त्रिपुराम्बा' (तीनों पुरों की माता) चक्रेश्वरी कही जाती है।

सृष्टि के पूर्व केवल शुद्ध सत्ता-स्वरूप एक चित्-शक्ति थी। वही अपनी इच्छा से इस विश्व को पैदा करती है। यह केवल निदिध्यासन की अवस्था में उत्पन्न होती है। 'इच्छा-सिद्धि' और 'सर्व-वीजा (सबकी मूल कारण) मुद्रा' इस चक्र को व्याप्त किये रहती है।

इस चक्र के चार आवरण-देवताओं में से 'महा-कामेश्वरी' वासना-क्षय का, 'महा-वज्रेश्वरी' मनो-नाश का, 'महा-भग-मालिनी' तत्व-ज्ञान का और 'महा-त्रिपुर-सुन्दरी' ब्रह्मात्मैक्य के अपरोक्ष ज्ञान का निरूपण करती हैं। यद्यपि महा-त्रिपुर-सुन्दरी समाधि के निरूपक नवें आवरण या 'विन्दु-चक्र' की चक्रेश्वरी हैं, तथापि वह इस चक्र के आवरण-देवताओं के साथ भी हैं क्योंकि सविकल्प समाधि निदिध्यासन की ही पूर्णता है। इस प्रकार इन दो चक्रों को पृथक् करना अनुचित है। भास्कर राय के अनुसार इन दोनों का आपस में समवाय-सम्बन्ध है, अतः ये दोनों अविभेद्य हैं।

यह आवरण 'सत्वापत्ति' और 'असंसक्ति' नामक चतुर्थ और पञ्चम ज्ञान-भूमिका का निरूपण करता है। जिस अवस्था में सत् अथवा ब्रह्म की प्राप्ति होती है, उसे 'सत्वापत्ति' और जिस अवस्था में शरीर और पदार्थ-मय संसार में अनासक्त रहने की पूर्ण स्वतन्त्रता है, उसे 'असंसक्ति' कहते हैं। ये दोनों अभानापादकावरण के अवशिष्टांश विपरीत-भावना को नष्ट कर देते हैं।

ब्रह्म के अपरोक्ष-ज्ञान में दो प्रतिबन्धकों—सप्तमावरण में 'संशय' और अष्टमावरण में 'विपरीत-भावना' के नष्ट होने से ब्रह्म-ज्ञान की प्राप्ति शीघ्र हो जाती है।

नवम आवरण—विन्दु

श्री-चक्र के मध्य में विन्दु है। वही नवम आवरण है। शास्त्र इसे सविकल्प-समाधि या तुरीयावस्था कहते हैं।

'मैं ही ब्रह्म हूँ और ब्रह्म मैं स्वयं हूँ'—इस प्रकार का अपरोक्ष अनुभव, जिसमें सब प्रकार के संशय और भ्रम दूर हो जाते हैं, 'समाधि' है। यह सब मनोवृत्तियों को रोकनेवाली है।

समाधि-अवस्था में निस्तरङ्ग समुद्र के समान शान्त शुद्ध मन निदिध्यासन की परिपक्वावस्था से समस्त अन्तरात्म-वृत्तियों को पूर्णतया भुलाकर ब्रह्म में स्थिर हो जाता है। जिस समय मन अपनी सम्पूर्ण वासनाओं को त्याग देता है, उसी समय जीव और ब्रह्म की एकता स्पष्ट हो जाती है अर्थात् दोनों की एकता का अनुभव तत्क्षण हो जाता है। निदिध्यासन के अभ्यास की अधिकता से अभ्यास-रूप अहंङ्कार नष्ट हो जाता है, मन शुद्ध सात्विक बन जाता है और आत्म-ज्ञान की विचार-धारा अविरल बहने लगती है। इसी अवस्था को 'संप्रज्ञान-समाधि' कहते हैं।

'विन्दु-चक्र' सविकल्प-समाधि की दशा का निरूपण करता है। इस चक्र में 'कामेश्वर' और 'कामेश्वरी' निवास करते हैं। 'कामेश्वर' महा-वाक्य में 'तत्'-पद से निरूपित निर्गुण ब्रह्म है और 'कामेश्वरी' महा-वाक्य के 'त्वं' पद में निरूपित कूटस्थ-साक्षी संवित् है।

इस चक्र का नाम है 'सर्वानन्दमय'। इससे सब आनन्द और परमानन्दों का निरूपण होता है। यह 'विन्दु-चक्र' ही काम-कला है। यह शब्द और विचार से परे है अर्थात् इसका वर्णन न शब्द कर सकते हैं और न मन ही इसका चिन्तन कर सकता है। अतएव इस चक्र की योगिनी का नाम है—'परापर-रहस्य (अत्यन्त गुप्त) योगिनी'।

इस 'विन्दु-चक्र' की आवरण-देवता एक-मात्र पर-देवी ही है और वह सच्चिदानन्द-परा-हन्ता है। इस चक्र की सिद्धि का नाम है 'प्राप्ति-सिद्धि' क्योंकि यह तुरीयावस्थातीत निर्गुण ब्रह्म की प्राप्ति कराती है। 'सर्व-योगिनी-मुद्रा' शिव-शक्ति-सामरस्य अथवा जीव-ब्रह्मैक्य के द्वारा अनुभूत ब्रह्मानन्दावस्था का निरूपण करती है। किसी भी प्रकार 'विन्दु-चक्र' का त्रिकोण के साथ सम्बन्ध न होने के कारण वह पृथक् चक्र है, जो समाधि का निरूपण करता है।

तुरीया विद्या सविकल्प समाधि या तुरीयावस्था में अनुभव की गई जीव और ब्रह्म की एकता अथवा शिव-शक्ति-सामरस्य का निरूपण करती है। यह तुरीया विद्या वह विद्या है, जिसे महा-पूर्तिकरी विद्या कहते हैं। इसे ही सर्वोच्च प्रकाश—श्रीश्रीविद्या कहते हैं और यह वह अवस्था है, जिसमें सर्वव्यापिनी विमर्श-शक्ति भी महा-प्रकाश में निमग्न हो जाती है। इस अद्वैतता का अनुभव ही 'सर्वानन्दमय चक्र' है। इसी को महोड्यान पीठ भी कहते हैं।

यह तुरीया विद्या तुरीयावस्था के अधिष्ठान का निरूपण करती है। यही पर-ब्रह्म है, जो प्रकाश और विमर्श का संयोग है। यह अमृत का उच्चतम स्वरूप मोक्ष है। यह वह परम अद्वितीय अवस्था है, जो समस्त मन्त्रों—निखिल-पीठों या मानसिक दशाओं, सब प्रकार के योगों, सर्व भाषाओं, सम्पूर्ण सिद्धियों और सब वीरों अथवा ज्ञानियों से परे है तथा उनका नियन्त्रण करती है। इस अवस्था को 'सापेक्षिक निर्विकल्प समाधि' कहते हैं।

इस चक्र की 'सिद्धि' और 'मुद्रा' के नाम क्रमशः 'सर्व-काम-सिद्धि' और 'सर्व-त्रिखण्डा-मुद्रा' हैं। 'सर्व-काम-सिद्धि' वह अवस्था है, जिसमें आत्मा और ब्रह्म की एकता की प्राप्ति की अभिलाषा भी

अनुपस्थित रहती है अर्थात् ब्रह्मात्मैक्य की इच्छा भी दूर हो जाती है । 'सर्व-त्रिखण्डा-मुद्रा' उस अवस्था का निरूपण करती है, जिसमें त्रिखण्ड अर्थात् तीन मण्डलों से बना हुआ जगत्, अखण्ड आत्मा में जले हुये वस्त्र के समान, जिस पर दग्धावस्था में भी सूक्ष्म तन्तु-रेखायें दिखाई देती हैं, प्रतीत होता है। यह अवस्था जीवन्मुक्तावस्था का निरूपण करती है ।

मरु-भूमि में जल का मिथ्या भ्रम बराबर बना रहता है, यद्यपि यह समझ में आ जाता है कि न वहाँ जल है और न हो सकता है । मध्याह्न-काल के समय मरु-भूमि में जब तक नेत्र सूर्य - किरणों को चमकती हुई देखा करते हैं, तब तक यह मरीचिका बनी रहती है । यह 'सोपाधिक भ्रान्ति' कही जाती है । जीवन्मुक्त भी इसी प्रकार संसार को देखता है । जब तक शरीर धारण करता है, तब तक संसार उसकी दृष्टि में बराबर आता रहेगा किन्तु वह संसार के अनुभव से शोक को नहीं प्राप्त होता क्योंकि वह अनुभव के लिए पुनः कर्म नहीं करता और न संसार में उसका पुनर्जन्म होता है । भुना हुआ अन्न भूख को तो शान्त कर सकता है किन्तु यदि उसे बोया जाय, तो उसमें अंकुर नहीं आ सकता। इसी प्रकार जीवन्मुक्त पुरुष भी संसार का उपभोग करता है । इस प्रकार नवम आवरण की पूजा सविकल्प-समाधि तथा जीवन्मुक्त की दशा का निरूपण करती है ।

संक्षेप में निःसङ्कोच भाव से यह कहा जा सकता है कि 'श्री-चक्र'—सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड एवम् पिण्डाण्डों की एकता का परिचायक है । उपासक की चित्-शक्ति और पर-शिव के ऐक्य-भाव का प्रत्यक्ष निरूपण 'श्री-चक्र' द्वारा होता है ।

सृष्टि-क्रम-वर्णन (महा-विन्दु→विन्दु-त्रिकोण-अष्टार-अन्तर्दशार-बहिर्दशार - चतुर्दशार - अष्ट-दल→षोडश-दल और भूपुर) के अनुसार 'श्री-चक्र' ब्रह्माण्ड का प्रतीक है ।

संहार या लय-क्रम-वर्णन (भूपुर : जाग्रदवस्था, षोडश-दल : स्वप्नावस्था, अष्टदल : सुषुप्त्यवस्था, चतुर्दशार : ईश्वर का विचार, बहिर्दशार : गुरु-प्राप्ति, अन्तर्दशार : श्रवण, अष्टार : मनन, त्रिकोण : निदिध्यासन, विन्दु : सविकल्प समाधि) के अनुसार 'श्री-चक्र' देवालय-रूपी पिण्डाण्ड का प्रतीक है ।

उच्च कोटि के साधक 'श्री-चक्र'-रहस्य की भावना अपने शरीर में करते हैं अर्थात् साधक का शरीर ही 'श्री-चक्र' है । साधक का ब्रह्म - रन्ध्र—बिन्दु - चक्र, मस्तक—त्रिकोण, ललाट—अष्ट-कोण, भ्रू-मध्य—अन्तर्दशार, कण्ठ—बहिर्दशार, हृदय—चतुर्दशार, कुक्षि—वृत्त, नाभि—अष्ट-दल-कमल, कटि—अष्ट-दल के बाहर का वृत्त, स्वाधिष्ठान—षोडश-दल कमल, मूलाधार—षोडश-दल के बाहर का वृत्त-त्रय, जानु—भूपुर की प्रथम रेखा, जङ्घा—भूपुर की द्वितीय रेखा, पाद (पैर)—भूपुर की तृतीय रेखा हैं ।

योगिनी हृदय-कहता है—

त्रिपुरेशी-महा-यन्त्रं पिण्डाण्डात्मकमीश्वरि ! यो जानाति स योगीन्द्रः शम्भुः स हरिर्विधिः ।।

अर्थात् यह 'श्री-चक्र' पिण्डात्मक तथा ब्रह्माण्डात्मक है । जो साधक इस बात को जानता है, वह योगीन्द्र शिव, हरि (विष्णु) और ब्रह्मा के समान है ।

ब्रह्माण्डात्मक एवं पिण्डात्मक 'श्री-चक्र' की साधना त्रिविध है—१ अन्तः, २ बाह्य और ३ भावना । 'श्री श्रीविद्या-नित्यार्चन' आदि पूजा-पद्धतियों में साधना के अन्तः व बाह्य विधान विस्तार से प्रकाशित हैं । आगे भावना के अनुसार 'श्री - चक्र' - साधना का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है ।

श्री-चक्र का साधना- क्रम

श्रीचक्र-साधना का वास्तविक अधिकारी

मनुष्य के भीतर छिपी हुई आत्म-शक्ति यदि विकसित हो जाये, तो वह व्यक्ति जीवन्मुक्त होकर ईश्वरत्व को भी प्राप्त कर सकता है। 'श्रीचक्र' के साधकों को अनेक शक्तियों का लाभ होते हुए आत्म-ज्ञान की उपलब्धि जिस प्रकार होती है, वैसी सिद्धि अन्य मार्गों से प्रायः असम्भव है। 'श्री-चक्र का परिचय' के अन्तर्गत दिए विवरण से यह तथ्य पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है।

'श्री-चक्र' के साधना-मार्ग में गुरुदेव 'शक्ति-रूप' हैं। आत्म-शक्ति-रूपिणी महाशक्ति, कूट-त्रयात्मक विद्या और श्रीगुरु—ये तीनों मिलकर साधक को आत्म-शक्ति से युक्त कर उच्च-से-उच्च अभीष्ट तक पहुँचा देते हैं। कहा भी है—**यथा घटश्च कलशः कुम्भश्चैकार्थ-वाचकाः, तथा मन्त्रो देवता च गुरुश्चैकार्थ-वाचकाः।'**

अतएव जिस साधक की प्रबल 'इच्छा-शक्ति' श्रीगुरु-निष्ठ होकर आत्म-समर्पण की भावना से युक्त हो जाग उठें; जिसकी 'ज्ञान-शक्ति' अन्तः-प्रकाशित होकर लहरा उठे और जिसकी दृढ़ 'क्रिया-शक्ति' दृढ़ निश्चयात्मक रूप से साधना-पथ पर तत्पर हो जाय, वही साधक इस विद्या की साधना करने का वास्तविक अधिकारी होता है।

श्री-चक्र का साधक भगवती त्रिपुरसुन्दरी की साक्षात् विभूति

चौदह भुवन-मय विराट् ब्रह्माण्ड के सृष्टि, स्थिति और संहार के विषय में जैसा वर्णन 'श्री-चक्र' में है, अन्यत्र कहीं नहीं है, यह पिछले विवेचन द्वारा हम जान चुके हैं। साथ ही यह भी अनुभव होता है कि 'श्री-चक्र' के भीतर मातृ - मण्डल के समूह से युक्त महा-चैतन्यात्मिका महा-शक्ति का क्या स्वरूप है तथा किस प्रकार उसका अन्तः एवं बाह्य विमर्श होता है। यह गहन मनन का विषय है। इन श्री त्रिपुराम्बा के सम्बन्ध में किसी समय भगवान् परशुराम ने महा-अवधूत भगवान् दत्तात्रेय से पूछा था और भगवान् दत्तात्रेय ने यही उत्तर दिया था कि 'उस महा-शक्ति की अन्तर्लीला सर्वथा ज्ञानातीत है लेकिन आत्म-शक्ति का प्रत्यक्ष अनुभव करनेवाला उस विश्वातीत स्थिति में अत्यन्त शीतल भाव में निमग्न होकर लय हो जाता है, जहाँ ब्रह्मानन्द के सिवा और क्या है, यह कोई नहीं बता सकता।'

इस प्रकार 'श्री-चक्र' विश्व-व्यापी-रूप से विराट् और ब्रह्माण्ड-मय होते हुए भी प्रत्येक लोक-मय और प्रत्येक पिण्ड-मय है। जगत् त्रिखण्ड-रूप से मेरु, कैलाश तथा भू—तीन 'प्रस्तार' वाला माना गया है। मनुष्य भी ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय त्रि-भाव से युक्त है। यही तीन पुर या 'त्रिपुटी' है। इस 'त्रिपुटी' में जो तीन भाव अलग-अलग मालूम होते हैं, वे वास्तव में एक ही तत्व हैं। जो भाग्यशाली साधक श्री-चक्र-साधना के द्वारा इस एकत्व को अनुभव करता है, वह 'आत्म-शक्ति'—भगवती त्रिपुर-सुन्दरी की साक्षात् विभूति-रूप हो जाता है। दूसरे शब्दों में 'श्री-चक्र'-साधना का लक्ष्य 'आत्म-शक्ति' का विकास है। यही वास्तविक शक्ति-आराधना है।

मनुष्य की दुर्बलता का नाश शक्ति-सञ्चय के द्वारा ही हो सकता है। 'आत्म-शक्ति' के विना कोई भी अपने को आत्म-स्वरूप में परिणत करने में समर्थ नहीं हुआ और न हो सकता है। केवल 'आत्म-शक्ति' ही वह साधन है, जिसके द्वारा कोई अभीष्ट-सिद्धि हो सकती है। इसीलिये अमोघ शक्तियों से भरी हुई 'श्री-विद्या' के 'श्री-चक्र' की प्रचुर महिमा है। श्रुति-वाक्य देखिए—

"तदेव चक्रं श्री-चक्रम्। तस्य नाभ्यामग्नि-मण्डले सूर्या-चन्द्रमसौ। तत्रोङ्कार-पीठं पूजयित्वा, तत्राक्षरं विन्दु-रूपं तदन्तर्गत-व्योम-रूपिणीं विद्यां परमां स्मृत्वा, महा-त्रिपुर-सुन्दरीमावाह्य पूजयेदिति भगवानब्रवीत्।

ततो देवी प्रीता भवति, स्वात्मानं दर्शयति। तस्माद् य एतैर्मन्त्रैर्यजति स ब्रह्म पश्यति, स सर्वं पश्यति। सोऽमृतत्वं च गच्छति, य एवं वेद।

तच्चक्रं यो वेत्ति, स सर्वं वेत्ति। स सकलाँल्लोकानाकर्षयति। स सर्वं स्तम्भयति।

नीली-युक्तं चक्रं शत्रून् मारयति, गतिं स्तम्भयति, सकल-लोकं वशी-करोति, रुद्रत्वं प्राप्नोति, विजयी भवति, श्रियमतुलां प्राप्नोति, वृष्टिर्भवति, परमानन्द-निर्भरो भवति।

स यश आप्नोति, स परमायुष्यमथवा परंब्रह्म भित्वा तिष्ठति, य एवं वेद।"

अर्थ सरल और सुबोध है। उस महा-शक्ति की कृपा हो, तो उल्लिखित सभी शक्तियाँ साधक को प्राप्त हो सकती हैं।

प्रत्यक्ष आत्म-विज्ञान—'श्री-चक्र'

बाह्य जगत् का रूप अन्तर्जगत् का केवल स्फुरण मात्र है। इन्द्रियाँ और देह के अङ्ग जिस समय अपने मूल विन्दु में लय होते हैं, उस समय न बाह्य जगत् रहता है, न उसके भोग ही रहते हैं। यहाँ तक कि चित्त में ज्ञानोदय होने से सूक्ष्म और कारण जगत् भी लय हो जाते हैं तथा मूल ग्रन्थि को भेद लेने पर इस भव-पाश को तोड़कर साधक अविद्या और मृत्यु दोनों से परे हो जाता है।

स्थूल, सूक्ष्म और कारण भूमियाँ महा-शक्ति के ही विकास की ही परिणति हैं। अतः उनका लय भी उसी सत्ता पर निर्भर करता है। मानव देह में जितने तत्व हैं, वे जब तक अन्तः-सङ्कोच अवस्था को प्राप्त नहीं होते, तब तक 'विन्दु' नाम से ज्ञात आत्म-तत्व की उपलब्धि नहीं होती। 'त्रिविध साम्य' का पारस्परिक भेद दूर होने पर ही शुद्ध भूमि में प्रवेश मिलता है। जिस शक्ति की सत्ता से स्थूल जगत्, सूक्ष्म जगत् और कारण जगत् में आत्म-प्रकाश विद्यमान है, वही 'त्रिविध साम्य' कहलाता है। ये तीनों साम्य आपस की भिन्नता के मिटने पर 'महा-साम्य' में एकीभूत हो जाते हैं। यही परमाद्वैत-वाचक ब्रह्म-तत्व है।

त्रि-विध जगत् महा-शक्ति के ही विविध विकास हैं। ये सब ऊर्ध्व-मूल पारमार्थिक पूर्ण सत्ता के ही रूपान्तर हैं। यही पूर्ण सत्ता महा-शक्ति का रूप है, जिसे परम पद कहते हैं। यह स्थान मन, वाणी,

बुद्धि आदि के परे है। जहाँ प्रकाश और विमर्श एक साथ प्रारम्भ होते हैं, वहीं महा-शक्ति और परम शिव का अखण्ड साम्य है। यह साम्य कभी भङ्ग नहीं होता। फिर भी विमर्श के कारण त्रिविध जगत् में साम्य के भिन्न-भिन्न रूप होकर प्रत्येक साम्य में पारस्परिक विरोध दिखाई देता है। यह उस महा-शक्ति की पूर्ण स्वतन्त्रता के कारण घटित होता है क्योंकि जब उसके भीतर कोई विक्षोभ होता है, तो उसके द्वारा विश्व-प्रपञ्च का उदय होता है।

महा-शक्ति का मूल स्थान सर्वातीत है। विश्व-व्यापिका या विश्वात्मिका होती हुई भी वह सदैव विश्वातीत स्थिति में रहती है। अतः साम्य में प्रगट होनेवाले उक्त विरोध या वैषम्य का ही यह परिणाम है कि गुण-मय छत्तीस तत्वों से युक्त विश्व का उद्भव हुआ। यह वास्तव में बहिर्ज्ञान ही है। दस इन्द्रियों और पञ्च-तन्मात्राओं से युक्त होकर जीव इस जगत् को अपने विलास का क्षेत्र मानता है लेकिन विश्व-व्यापिनी संहार-शक्ति इस विलास को निरन्तर भग्न करती रहती है। इसका कारण जीव के पास सोलहवीं वस्तु का अभाव है। दस इन्द्रियां + पांच तन्मात्रायें = पन्द्रह कलायें जीव के शरीर में विद्यमान हैं। सोलहवीं वस्तु या कला है 'निर्वाण', जिससे युक्त होते ही जीव मुक्त हो जाता है।

'निर्वाण'-कला द्वारा पाश-जाल से छूटकर जीव शिव-भाव को प्राप्त कर सकता है किन्तु महा-शक्ति का साक्षात्कार तब भी नहीं हो पाता। इसके लिए शिव-भाव से शव-भाव में आना पड़ता है। जब जीव अपने को शवासन-रूप में उस महा-शक्ति को अर्पण कर देता है, तब उक्त साक्षात्कार सम्भव हो पाता है।

महा-शक्ति पञ्च-प्रेतारूढ़ा है। शवासन उसे अति प्रिय है। त्रैलोक्य-जननी की पूर्ण कृपा उसी भक्त साधक पर होती है, जो अपने को शवासन-भाव से समर्पित करने में समर्थ होता है। अभीष्ट-सिद्धि का अन्तिम स्थान यही है।

उक्त रूप से 'श्री-चक्र' प्रत्यक्ष आत्म-विज्ञान है। यह उस महा-शक्ति की उपासना का विषय है, जो अन्तर और बाह्य—द्विविध रूप से, दो प्रकार की क्रियाओं से सम्पन्न होता है। अन्तर-क्रिया 'योग' है और बाह्य क्रिया है 'उपासना'। इन दोनों का फल एक ही है।

'श्री-चक्र' की अन्तर और बाह्य द्विविध साधना-पद्धति

विश्व या देह (शरीर) में अधः और ऊर्ध्व-स्थित अकुल सहस्र-दल-कमल को छोड़कर मध्य के आठ चक्रों में छत्तीस तत्वों की अवस्थिति है। इन चक्रों के भीतर विन्दु-रूप से प्रत्येक तत्व की अधि-ष्ठात्री शक्ति विराजमान है। उक्त ३६ तत्वों को विक्षेप-रहित कर परम शान्त या लय करने के लिए प्रत्येक तत्व के मूल विन्दु में पहुँचना आवश्यक है। इस प्रकार अष्ट-चक्रों में भ्रमण करने से ही अभीष्ट-सिद्धि हो सकती है।

इच्छा-शक्ति को प्रवल कर ज्ञान-शक्ति और क्रिया-शक्ति के द्वारा मातृका-शक्ति के योग से जीव भीतर प्रवेश कर चक्रों का भेदन कर सकता है किन्तु जब तक कुण्डलिनी-शक्ति उठकर सुषुम्ना-मार्ग में प्रवेश नहीं करती, तब तक उपासना फलीभूत नहीं होती। यही नहीं, वैसा न होने पर साधक सङ्कट में भी पड़ सकता है।

कुण्डलिनी-शक्ति का उद्‌बोधन हो जाने पर अति शान्ति और धैर्य के साथ अधः अकुल से आज्ञा-चक्र तक के सभी देहस्थ चक्रों में 'श्री-चक्र' के प्रत्येक चक्र की भावना करते हुए उस चक्र की शक्तियों और चक्रेश्वरी को आराधना उपयुक्त मुद्रा-सहित करनी होती है। यही अन्तर-उपासना का

पूर्व-रूप है। इस उपासना में इन्द्रियों को स्तब्ध और प्राण-गति को सम-भाव में रहना चाहिए। इससे साधक जैसे-जैसे अग्रसर होगा, वैसे ही वैसे वह सूक्ष्म भाव में पहुंचता जायगा। वह क्रमशः स्थूल भूमि से सूक्ष्म भूमि में, सूक्ष्म से कारण भूमि में और कारण से महा-कारण की ओर आगे बढ़ेगा। दूसरे शब्दों में वह क्रिया-शक्ति और ज्ञान-शक्ति के क्षीण होने पर अद्वैत-भूमि में पहुँचेगा। यहीं पहुँचकर साधक महा-शक्ति का प्रत्यक्ष दिव्य उपासक हो सकता है।

साधक अपनी देह के भीतर ब्रह्माण्ड की रचना का भाव स्थापित करता है और भिन्न-भिन्न अङ्गों में गणेश, मातृका-योग-पीठ, राशि, योगिनी, नक्षत्र, ग्रह, सृष्टि, स्थिति, संहार, मातृका, चक्र, ऋष्यादि, मन्त्रादि की प्रतिष्ठा न्यास द्वारा करता है। इस प्रकार वह उपासना-क्रम में प्रवेश कर बीजों के तत्व, नाद-विन्दु के रहस्य, यन्त्रोद्धार, मन्त्रोद्धार, मन्त्र-चैतन्य, अध्व-शुद्धि, भूत-शुद्धि, प्राण-प्रतिष्ठा, रश्मि-माला, चित्त-शोधनादि क्रियाओं को हृदयङ्गम करता है। स्पष्ट है कि इस सबके लिए अनुभवी गुरुदेव का मार्ग-दर्शन परमावश्यक है। अतः गुरु-तत्व और दीक्षा-तत्व का रहस्य समझना अति वांछनीय है। तभी उपासना का अधिकार प्राप्त होता है।

एक अकुल से दूसरे अकुल तक जिस प्रकार ब्रह्माण्ड की रचना है, उसी प्रकार देह में भी मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध, लम्बिकाग्र, आज्ञा और सहस्र-दल कमल हैं। आज्ञा-चक्र के भेदन के बाद साधक विन्दु-भाव में पहुँचता है, जहाँ ज्ञानोदय होता है। यह बहुत सूक्ष्म स्थान है। जब तक एकाग्र-चित्त-युक्त देहादि इन्द्रियाँ तटस्थ होती हुई उपराम को प्राप्त नहीं होतीं, तब तक विन्दु पर टिकना कठिन ही है। यह विश्व-प्रपञ्च से बहुत ऊपर की स्थिति है और यहाँ साधक साक्षी-रूप से, फिर भी 'अहं'-भाव में प्रतिष्ठित होता है। यह एक निरपेक्ष-भाव है, जहाँ साधक द्रष्टा होकर अपने से नीचे सभी प्रपञ्चों का साक्षी होता है।

आगे चलकर सभी कलायें गुप्त हो जाती हैं और 'अहं'-भाव भी लय हो जाता है। तब साधक अर्ध-चन्द्र-विन्दु में स्थित होता है। यह प्रधान चक्र 'विन्दु' माना जाता है, जहाँ महा-शक्ति की अष्ट कलायें प्रकट होती हैं, जो क्रमशः क्षीण होकर उस महा-शक्ति की नवीं कला प्रगट होती है। अन्त में यह भी क्षीण होकर एक भयानक आवरण साधक के ऊपर पड़ता है, जिसे 'रोधिनी-अवस्था' कहते हैं। इस महा-अवरोध से निकलकर प्रधान चक्र का भेदन करना अति कठिन है। महा-शक्ति एवं गुरुदेव की कृपा से ही यह भेदन सम्भव हो पाता है।

'रोधिनी'-भेद के बाद साधक 'नाद-भूमि' में पहुँचता है, जहाँ स्पष्ट नाद सुनाई देते हैं। यह पूर्ण चैतन्य-भूमि है, जहाँ चित्-शक्ति का पूर्ण विकास होता है। आगे चलकर 'नाद' भी किसी विन्दु में लय होता है और चित्-शक्ति के अधिष्ठान में एक 'व्यापिका अवस्था' प्राप्त होती है, जिसका रूप त्रिकोणात्मक है। उस त्रिकोण के तीनों कोणों पर वामा, ज्येष्ठा और रौद्री शक्तियाँ हैं। इसके बाद 'समना शक्ति' का उदय होते ही साधक 'निष्कल भाव' को प्राप्त हो जाता है और सारे भाव तिरोहित हो जाते हैं। साधक निवृत्ति-भाव में पहुँच जाता है। यह शुद्ध 'निर्विकल्प स्थिति' है, जो देश-काल-हीन त्रिगुणातीत तुरीयातीत या शान्त्यतीत अवस्था है। यहाँ केवल एक 'निर्वाण कला' दिव्य-चिद्-रूप से या चैतन्य द्रष्टा-रूप से रहती है। यह नितान्त 'शिव-भाव' है।

महा-शक्ति की कृपा से 'निर्वाण-कला' भी क्षीण हो जाती है और साधक 'उन्मना' के ऊपर होकर 'महा-विन्दु' में स्थित होता है, जो, शुद्ध 'शिवोऽहं' का भाव है। यह भाव भी आगे चलकर क्षीण हो जाता है अर्थात् 'विन्दु' भी गुप्त हो जाता है और 'महा-शून्य' की प्राप्ति होती है। यहाँ जो कुछ है,

वह 'परा-शक्ति' ही है। इसके आगे कुछ भी नहीं है। इस स्थिति का कुछ भी वर्णन न कभी हुआ, न कभी होगा।

यह वर्णन संहार-क्रम के अनुसार है। जैसे महा-प्रलय में स्थूल ब्रह्माण्ड का नाश होकर सभी लोक निष्कल ब्रह्म के भीतर प्रवेश कर एकात्म-भूत हो जाते हैं, उसी प्रकर योगी साधक भो अपने देहादिक अंगों को अति संकुचित या लीन करके निष्कल-रूप में हो जाता है।

साधना-क्रम

पद्धति के अनुसार कुण्डलिनी-उत्थापन करने के बाद 'भूत-शुद्धि' करे। 'भूत-शुद्धि' का तात्पर्य यह है कि देहस्थ भू-तत्व को जल-तत्व में, जल को अग्नि में, अग्नि को वायु में, बायु को आकाश में, आकाश को महत्-तत्व में, महत्-तत्व को अहङ्कार में, अहङ्कार को प्रकृति में प्रकृति को अव्यक्त में और को पुरुष-तत्व में मन्त्र-प्राणायामादि द्वारा लय करना।

योग की शुद्ध भूमिका में प्रवेश करने की शक्ति चैतन्य में ही है। मन-बुद्धि-ध्यानादि द्वारा अपने भीतर दिव्य तत्वों का कल्पित चित्र खींच सकते हैं लेकिन अनुभव के लक्ष्य में ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय चैतन्य पुरुष ही है। इसलिये शुद्ध आत्म-भाव में होकर अन्तर-प्रवेश की क्रिया की जाती है। इससे साधक अव्यक्त जैसे-जैसे आगे बढ़ता है, वैसे हो वैसे वह सूक्ष्म होता जाता है।

'भूत-शुद्धि' के बाद मन्त्र द्वारा आत्म-भाव की 'प्राण-प्रतिष्ठा' करे। तदनन्तर देह के भीतर ब्रह्माण्ड की रचना का भाव उदय कर भिन्न-भिन्न अङ्गों में गणेश-मातृका, योग-पीठ, राशि, योगिनी, नक्षत्र, ग्रह, सृष्टि-संहार-मातृका, चक्र, ऋष्यादि, मन्त्रादि न्यास कर इन सबकी प्रतिष्ठा करे। फिर चित्त-शोधनादि-क्रिया एवं रश्मि-माला-मन्त्र का प्रयोग करने के बाद अत्यन्त अन्तरस्थ होते हुए 'भूपुर' में प्रवेश करे।

(१)

'अकुल' सहस्र-दल-कमल (नितान्त अधः देश या भूपुर) : त्रैलोक्य-मोहन चक्र

शक्ति-उद्‌बोधन का यह मूल स्थान है। यही ब्रह्माण्ड का 'मूलाधार-चक्र' है। ब्रह्माण्ड की कुण्डलिनी-शक्ति यहीं रहती है। षड्-दल कमल या **'कुल'** के ऊपर स्थिति अधः सहस्र-दल से लेकर ऊर्ध्व सहस्र-दल कमल तक जो मध्यस्थ प्रपञ्च है, वहीं ब्रह्माण्ड है, जहाँ चैतन्यता पाई जाती है। 'भूपुर' का यह स्थान अनादि-काल से शव-वत् अचेतन-भाव में रहता है। आदि 'कुल'-कुण्डलिनी - शक्ति जब इस स्थान से उठकर ऊर्ध्व सहस्र-दल कमल या **'अकुल'** के किसी विन्दु में प्रवेश करतो है, तो वहीं वह परम शिव को चैतन्य कर देती है। तब अकुल-सागर में श्वेत विन्दु उत्पन्न होता है। इस विशाल गगन-भूमि के भीतर १४ स्थूल लोक और अनेक-सूक्ष्म भुवन समाए हुए हैं। यह भूमि **'हरित रंग'** की भाव में आती है। यह महा-काल का स्थान है, अतः शव-रूप बनकर निःश्वास होकर ही यहाँ उपासना करनी होती है।

'यन्त्र' में शक्तियों और देवताओं का पूजनादि ध्यान-पूर्वक क्रमशः पूर्व, आग्नेय, दक्षिण, नऋत्य, पश्चिम, वायव्य, उत्तर और ईशान में करना चाहिए। **'भूपुर'** का ध्यान शरीर के बाहर इस प्रकार करना चाहिए, मानों यह शरीर-रूपी ब्रह्माण्ड 'अकुल'-सागर के भीतर हो। **'अकुल'** का अर्थ है परम शिव का भाव।

यह ध्यान में रहे कि प्रत्येक चक्र में साधक अपने को 'विन्दु'-रूप समझ विन्दु-रूप से ही चक्र के एक स्थान से दूसरे स्थान में जाने की भावना करे किन्तु जहाँ आराधना करनी है, वहाँ पहुँचकर अपने को दिव्य 'विज्ञान-मय पुरुष' के रूप में भावना करनी चाहिए। इसी प्रकार देवता और शक्तियों के भी दिव्य विज्ञान-मय स्वरूप का ध्यान करना होता है।

अपने को दिव्य देह-युक्त समझते हुए देवताओं का पूजन करे। देह के अवयवों की शक्तियाँ स्थान-स्थान पर वर्णित हैं। वे अवयव एक के बाद एक क्षीण होते चलेंगे। पूजन और तर्पण की क्रियायें सर्वथा मानसिक भाव से ही करनी हैं। अन्तर-पूजा में स्थूल गन्ध, पुष्पादि की कोई आवश्यकता नहीं होती।

भू-तत्व का 'गन्ध' लगाते समय यह भावना करे कि देवता का सर्वाङ्ग सुवर्ण-सदृश भू-तत्व के प्रकाश से युक्त हो गया है। आकाश-तत्व का पुष्प अर्पित करते समय यह कल्पना करे कि देवता शुभ्र आकाश-वर्ण का हो रहा है। वायु-तत्व का धूप सुँघाते समय समझे कि दिव्य धूप की सुगन्धि चारों ओर फैल रही है। तेज-तत्व का दीपक दिखाते समय यह भावना करे कि देवता का सर्वाङ्ग दिव्य दीप के समान प्रकाशमान हो गया है। जल-तत्व का नैवेद्य देते समय देवता को चन्द्रमा के समान दीप्तिमान ध्यान करे। यही **'मानस-पूजन'** का रहस्य है।

इसके बाद यह भावना करे कि दोनों भौंहों के मध्य विन्दु से चन्द्र की सहस्र किरणों जैसा स्निग्ध प्रकाश निकल कर देवता की ओर जा रहा है और देवता को आर्द्र पूर्ण चन्द्र के प्रकाश से आप्लावित कर रहा है। यही **'मानस-तर्पण'** का रहस्य है।

उक्त प्रकार पूजन-तर्पण करना ही देवता की आराधना है। प्रत्येक चक्र की चक्रेश्वरी के स्थान में इसी प्रकार पूजन-तर्पण कर अन्त में चक्रेश्वरी की प्रार्थना की जाती है। यथा—

अभीष्ट-सिद्धिं मे देहि शरणागत-वत्सले ! भक्त्या समर्पये तुभ्यं प्रथमावरणार्चनम् ।।
पूजितास्तर्पिताः सन्तु ।।

उक्त प्रार्थना में यथा स्थान 'द्वितीय, तृतीय या चतुर्थ' इत्यादि 'आवरणार्चन' के पूर्व परिवर्तन कर लेना चाहिए।

प्रस्तुत भूपुरात्मक 'त्रैलोक्य-मोहन-चक्र' का पूजन-क्रम निम्न प्रकार है—

१—भूपुर के भीतर अखण्ड-मण्डलाकार वृत्ति और उसके भीतर प्रकाशित ब्रह्माण्ड-मण्डल का **'श्री-चक्र'** के रूप में ध्यान करे। फिर गुरु, परम गुरु, गुरु-पादुका, परम गुरु-पादुका, भद्रकाली, भैरव और गणेश का ध्यान करे।

२—भूपुर के बाहर के चारों कोणों में ईश्वर की चार कलाओं का पूजन करे।

३—भूपुर की 'बाहर की प्रथम 'श्वेत-वर्ण' की रेखा पर अणिमादि अष्ट सिद्धियों का पूजन।

४—मध्य की द्वितीय 'अरुण' वर्ण की रेखा पर ब्राह्मी आदि अष्ट मातृकाओं का पूजन।

५—भीतर की तृतीय 'पीत' वर्ण रेखा पर सर्व-संक्षोभिणी आदि दस मुद्रा-शक्तियों का पूजन।

६—तृतीय रेखा के समीप इन्द्रादि दश दिक्-पालों का पूजन।

७—तदनन्तर **'त्रिपुरा चक्रेश्वरी'** की पूजा व प्रार्थना कर 'सर्व-संक्षोभिणी मुद्रा' का प्रदर्शन।

यह चक्र देहस्थ त्वग् आदि सात धातुओं, सङ्कल्प-विकल्प, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, पुण्य-पाप और षड्रसों के लय करने का स्थान है।

(४)(२)

षोडश-दल-कमल : सर्वाशा-परिपूरक चक्र (**'कुल' षट्-दल के ऊपर तथा भूपुर के भीतर**)

यह चक्र 'चान्द्र-खण्ड' या 'प्रमेय पुर' कहलाता है। इस चक्र की भावना देह के बाहर या पृथ्वी पर षट्-दल कमल के ऊपर तक चारों ओर वृत्ताकार फैले हुए रूप में की जाती है।

इस चक्र का पूजन-क्रम निम्न प्रकार है—

१—प्रत्येक दल के कोण के बाहरी भाग में चन्द्र की १६ कलाओं—अमृता आदि का पूजन।

२—प्रत्येक दल के कोण में सदाशिव की १६ कलाओं—निवृत्ति, प्रतिष्ठा आदि का पूजन।

३—प्रत्येक दल के कोण के नीचे १६ नित्या-शक्तियों—कामेश्वरी, भगमालिनी आदि का पूजन।

४—प्रत्येक दल के बीच में १६ शक्तियों—कामाकर्षिणी, नित्या कला आदि का पूजन।

५—अन्त में कामाकर्षिणी नित्या कला के समीप 'त्रिपुरेशी-चक्रेश्वरी' की पूजा-प्रार्थना कर सर्व-विद्राविणी मुद्रा का प्रदर्शन।

यह चक्र पञ्च महा-भूत, दश इन्द्रियों और मनो-विकार—इन १६ अवयवों के लय करने का स्थान है। इन १६ अवयवों की ही शक्तियाँ कामाकर्षिणी नित्या कला आदि हैं।

(३)

अष्ट-दल-कमल : सर्व-संक्षोभण चक्र

(आधार-चक्र चतुर्दल-कमल के ऊपर तथा यन्त्रस्थ षोडश-दल कमल के भीतर)

यह चक्र 'आग्नेय खण्ड' या 'प्रमातृ पुर' कहा जाता है। इस चक्र का ध्यान शरीर के भीतर गुदा के पास चतुर्दल-कमल के रूप में किया जाता है। इसका ध्यान करने के पहिले अपने दोनों चरणों के अंगूठों से प्रकाश के निकलने की भावना कर गुदा का सङ्कोचन करे, तब आधार-चक्र का ध्यान करे। यह आत्म-प्रकाशक चक्र है। इसके चार दल सत, रज, तम और मन के द्योतक हैं। इसके ध्यान से साधक साधु-वृत्तिवाला होता है।

चार दलों में वं, शं, षं, सं—ये चार अक्षर हैं, जिनकी शक्तियाँ हैं—१ वरदा, २ श्री, ३ षण्डा और ४ सरस्वती। चक्र की स्वामिनी 'शाकिनी शक्ति' है और यहाँ 'क्लीं' बीज-युक्त ब्रह्मणे पृथिव्यधिपतये निवृत्ति-कला है। यह चक्र देहस्थ 'लं' बीज-युक्त भू-तत्व का स्थान है और इसके देवता हैं गणपति। इस चक्र में गणपति का पूजन कर 'कामकला'-मन्त्र का प्रयोग किया जाता है।

तदनन्तर आधार-चक्र के ऊपर यन्त्रस्थ अष्ट-दल कमल का ध्यान करते हुए निम्न क्रम से शक्तियों का पूजन करे—

१—प्रत्येक दल में अनङ्ग-कुसुमादि अष्ट-शक्तियों का पूजन।

२—अनङ्गा-कुसुमा के समीप 'त्रिपुर-सुन्दरी चक्रेश्वरी' की पूजा-प्रार्थना कर 'सर्वाकर्षिणी मुद्रा' का प्रदर्शन।

इस चक्र में वचन, आदान, गमन, विसर्ग, आनन्द, हान, उपेक्षा, बुद्धि—ये बुद्धि के अष्ट-भेद अनङ्ग-कुसुमादि अष्ट-शक्तियों द्वारा लय होते हैं।

(४)

चतुर्दशार : सर्व-सौभाग्य-दायक चक्र (देहस्थ स्वाधिष्ठान चक्र—षट्-दल)

इस चक्र को 'चान्द्र खण्ड' या 'प्रमेय पुर' कहते हैं। देह के भीतर इसका ध्यान 'स्वाधिष्ठान चक्र' के ऊपर किया जाता है। लिङ्ग के पासछः दलोंवाला 'स्वाधिष्ठान चक्र' है, जिसे 'उपायन पीठ' कहते हैं। इसमें 'बं भं मं यं रं लं'—ये छः अक्षर हैं, जिनकी शक्तियाँ हैं—१ बन्धिनी, २ भद्रकाली, ३ महा-माया, ४ यशस्विनी, ५ रक्ता और ६ लम्बोष्ठो। चक्र की स्वामिनी 'काकिनी शक्ति' है। देवता चतुर्मुख ब्रह्मा हैं, जो तेजोमय लाल वर्ण के हैं। इस चक्र के ध्यान से साधक सुन्दर, युवा और आयुष्यमान् होता है। वागीश्वरी और कामेश्वरी-मन्त्रों का प्रयोग किया जाता है। पूजन का क्रम निम्न प्रकार है—

१—ब्रह्मा की सृष्टि, ऋद्धि आदि दस कलाओं का पूजन।

२—प्रत्येक कोण में क्रमशः सर्व-संक्षोभिणी आदि १४ शक्तियों का पूजन।

३—सर्व-संक्षोभिणी शक्ति के समीप 'त्रिपुर-वासिनी-चक्रेश्वरी' की पूजा-प्रार्थना कर 'सर्व-वशङ्करी मुद्रा' का प्रदर्शन।

इस चक्र में अलम्बुषा, कुहू, विश्वोदरी, वरुणा, हस्तिजिह्वा, यशस्वती, अश्विनी, गान्धारी, पूषा, शङ्खिनी, सरस्वती, इड़ा, पिङ्गला और सुषुम्ना—इन १४ नाड़ियों द्वारा कर्ण, पेट, लिङ्ग, नेत्र, अण्ड-कोष, गुदा, कण्ठ, ब्रह्म-रन्ध्र, मुख, प्राण, अपान—ये सब अन्तर्मुखी होकर इस प्रकार स्तब्ध हो जाते हैं, जैसा कि सुषुप्ति के समय होता है। उक्त अवयवों को सर्व-संक्षोभिणी आदि १४ शक्तियाँ लय करती हैं।

(५)

बहिर्दशार : सर्वार्थ-साधक चक्र (देहस्थ मणिपूर चक्र—दश-दल कमल)

यह बाहर का १० त्रिकोणोंवाला चक्र 'सौर खण्ड' या 'प्रमाणपुर' कहलाता है। यह 'प्राण-मय कोष' का चक्र है। देह के भीतर नाभि-देश में 'मणिपुर चक्र' १० दलवाला है। यहाँ 'वं' बीज-युक्त जल-तत्व है और 'ह्लीं' बीज-युक्त विष्णवे जलाधिपतये प्रतिष्ठा कला है। दलों में 'डं ढं णं तं थं धं नं पं फं'—१० अक्षर हैं, जिनकी शक्तियाँ हैं—१ डामरी, २ ढङ्कारिणी, ३ णार्णायी, ४ तामसी, ५ स्थाणवी, ६ दाक्षायणी, ७ धात्री, ८ नारी, ९ पार्वती, १० फट्कारिणी। चक्र की स्वामिनी 'लाकिनी शक्ति' है। देवता आपः पुरुष भुजङ्ग-शयनस्थ महा-विष्णु हैं। उनके पैरों के पास महालक्ष्मी और शिर के पास योग-माया विराजमान हैं। यह चक्र वशिनी, कामेश्वरी, मोदिनी, विमला, अरुणा, जयिनी, सर्वेश्वरी और कौलिनी—इन अष्ट योगिनियों से घिरा हुआ है। योग-शक्ति से यहाँ देह पूर्ण रूप से स्थिर हो जाती है। यहाँ विष्णु की योग-माया और महा-लक्ष्मी के मन्त्रों का प्रयोग किया जाता है।

'मणिपुर चक्र' के ऊपर बहिर्दशार चक्र का ध्यान करे। पूजन का क्रम निम्न प्रकार है—

१—सूर्य की तपिनी, तापिनी आदि कलाओं का पूजन।

२—प्रत्येक कोण के ऊपर विष्णु की जरा, पालिनी आदि १० कलाओं का पूजन।

३—प्रत्येक कोण के मध्य में सर्व-सिद्धि-प्रदा आदि १० मूल शक्तियों का पूजन।

४—सर्व-सिद्धि-प्रदा के समीप 'त्रिपुरा-श्री चक्रेश्वरी' की पूजा-प्रार्थना कर 'उन्मादिनी मुद्रा' का प्रदर्शन।

इस चक्र में प्रकृति, मन, बुद्धि और अहङ्कार क्रमशः संकुचित होते हुए प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त, धनञ्जय—इन दस प्राण-वायु द्वारा श्वासोच्छ्वास, अपान, कर्ण, सभी नाड़ियाँ, तालु, देह-गति और नेत्र अन्तर्मुखी होते हैं और साधक प्राण-मय कोश में स्थित हो जाता है। यहीं जीव शिव का समष्टि-भूत होने लगता है।

(६)

अन्तर्दशार : सर्व-रक्षाकर चक्र (देहस्थ अनाहत चक्र—द्वादश-दल-कमल)

यह भीतर का चक्र भी १० त्रिकोणोंवाला है। इसे भी 'सौर खण्ड' या 'प्रमाण-पुर' ही कहते हैं। हृदय के ऊपर 'अनाहत चक्र' है, जिसके १२ दल हैं। यह अष्ट-दल कमल से ढँका हुआ है। उसके मध्य में अधः की ओर एक लिङ्गाकार अंगुष्ठ-बराबर गुह्य देश है, जिसके मध्य में पद्मराग मणि के समान कान्ति-वाला विज्ञान-मय पुरुष है। उसे ही हृदयस्थ चैतन्य आत्मा कहते हैं। वह पूर्ण-काम पुरुष है। यहाँ आत्मेच्छा सदा सिद्ध है। इस स्थान में वशीकरण शक्ति है। हृद्-देश में छः छिद्र हैं—१ पूर्व छिद्र के बाहर सूर्य, २ दक्षिण छिद्र के बाहर चन्द्र, ३ पश्चिम छिद्र के बाहर अग्नि, ४ उत्तर छिद्र के बाहर इन्द्र, मेघ, विद्युत्, ५ ऊर्ध्व छिद्र के ऊपर ज्योति और ६ अधः छिद्र के नीचे तम का अधिष्ठान है।

द्वादश दलों में 'कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं'—ये १२ अक्षर हैं, जिनकी शक्तियाँ हैं—१ कङ्काली, २ खण्डिता, ३ गायत्री, ४ घण्टाकर्षिणी, ५ ङार्णायी, ६ चण्डी, ७ छाया, ८ जया, ९ झङ्कारिणी १० ज्ञान-रूपा, ११ टङ्क-हस्ता, १२ ठङ्कारिणी। चक्र की स्वामिनी 'राकिनी शक्ति' है। यहाँ 'रं' वीज-युक्त अग्नि-तत्व और 'हुं' बीज-युक्त रुद्र-तेजोऽधिपतये विद्या कला है। चक्र के चारों ओर विद्या, रेचिका, मोचिका, अमृता, दीपिका, ज्ञाना, आप्यांयनी, व्यापिनी, मेधा, व्योम-रूपा, सिद्ध-रूपा और लक्ष्मी—ये १२ योगिनियाँ हैं। यहाँ प्रकाशवान, अनन्तवान, ज्योतिष्मान और आयतनवान् पादों की ४-४ कलाओं का ध्यान किया जाता है तथा अभीति-दायिनी, सेतु, महा-विद्या आदि मन्त्रों एवं अनेक ब्रह्म-विद्याओं का भी प्रयोग किया जाता है। यहाँ परमात्मा और जीवात्मा के एकीकरण की क्रिया प्रारम्भ होती है।

अनाहत चक्र के ऊपर अन्तर्दशार चक्र का ध्यान करे। इस चक्र में पूजन का क्रम निम्न प्रकार है—

१—प्रत्येक कोण के ऊपर रुद्र की तीक्ष्णा, रौद्री आदि १० कलाओं का पूजन।

२—प्रत्येक कोण व मध्य में सर्वज्ञादि १० मूल शक्तियों का पूजन।

३—सर्वज्ञा शक्ति के समीप 'त्रिपुर-मालिनी चक्रेश्वरी' की पूजा-प्रार्थना कर 'महांकुशा मुद्रा' का प्रदर्शन।

इस पूजन-क्रम के पूर्ण होने पर हृदय के भीतर त्रिपुरेश्वरी के समक्ष श्यामा शक्ति का पूजन किया जाता है। श्यामा त्रिपुरेश्वरी की मन्त्रिणी शक्ति है, जिसकी प्रसन्नता से त्रिपुरा शीघ्र प्रसन्न होती हैं।

इस चक्र में पञ्च-तन्मात्राओं के भीतर छिपे अवयव क्षीण होते हैं। साधक यहाँ शुद्ध विज्ञान-भूमि में प्रवेश करता है। वैश्वानर अग्नि की १० कलाएँ—रेचक, पूरक, शोषक, दाहक, प्लावन, क्षारक, उद्धारक, क्षोभक, मोहक और जृम्भक—अन्तर्मुखी होकर कञ्चुक शक्ति के भीतर हो जाती हैं। उक्त अवयवों को सर्वज्ञा सर्वशक्ति आदि १० मूल शक्तियाँ अन्तर्मुखी बनाती हैं।

(७)

अष्टार : सर्व-रोग-हर चक्र (देहस्थ विशुद्ध चक्र—षोडश-दल कमल)

अष्ट-कोण-मय इस चक्र को 'अग्नि-खण्ड' या 'प्रमातृ पुर' कहते हैं। यहाँ साधक को शुद्ध विद्या-तत्व का ज्ञान होता है, जिसके द्वारा वह ईश्वर-तत्व, सदा-शिव-तत्व और शिव-तत्व के समीप पहुँचता है। ब्रह्माकार वृत्ति की छटा उसे दिखाई देने लगती है।

कण्ठ-देश में सोलह दलोंवाला 'विशुद्ध चक्र' है। इन दलों में १६ स्वर हैं, जिनकी शक्तियाँ हैं—१ अमृता, २ आकर्षिणी, ३ इन्द्राणी, ४ ईशानी, ५ उमा, ६ ऊर्ध्व-केशी, ७ ऋद्धिदा, ८ ॠकारा, ९ ऌकारा, १० ॡकारा, ११ एक-पादा, १२ ऐश्वर्यात्मिका, १३ ओङ्कारा, १४ औषधी, १५ अम्बिका, १६ अक्षरा। चक्र की स्वामिनी है 'डाकिनी शक्ति'। यहाँ 'यं' बीज-युक्त वायु-तत्व और 'हौं' बीज-युक्त ईशान वायव्याधिपति शान्ति-कला है। यह चक्र गुरु का स्थान माना जाता है। यहाँ आचार्य पूर्व-रूप, शिष्य विद्या-रूप, विद्या सन्धि और प्रवचन सन्धान है। यहाँ गुरु को कोटि - सूर्य के समान प्रकाशमान ध्यान करने से साधक रोग-रहित और आयुष्मान् होता है। यहीं गुरु-पादुका-पूजन, गुरु - स्मरण और महा-सेतु मन्त्र का प्रयोग किया जाता है।

'विशुद्ध चक्र' के ऊपर अष्टार चक्र का ध्यान करे। पूजन-क्रम निम्न प्रकार है—

१ अग्नि की धूम्रार्चिषी, ऊष्मा आदि १० कलाओं का पूजन।

२ प्रत्येक त्रिकोण के मध्य में वशिनी वाग्देवता आदि ८ मूल शक्तियों का पूजन।

३ वशिनी वाग्देवता के समीप 'त्रिपुरा-सिद्धा चक्रेश्वरी' की पूजा-प्रार्थना कर 'खेचरी मुद्रा' का प्रदर्शन।

इस चक्र में महा-शक्ति द्वारा जीव और शिव का एकीकरण प्रारम्भ होता है। शीतोष्ण, सुख, दुःख, स्वेच्छा, तीनों गुण—ये सब कञ्चुक शक्ति के भीतर छिप जाते हैं।

(८)

महा-त्र्यस्र : सर्व-सिद्धि-प्रद चक्र (देहस्थ लम्बिका (इन्द्र-योनि)—अष्ट-दल कमल)

यह त्रिकोण-चक्र भी 'आग्नेय खण्ड' या 'प्रमातृ-पुर' कहलाता है। यह त्रि-अवस्थात्मक विज्ञान-मय कोष ही है। यहाँ महा-शक्ति का काम-कला-कूट है। यही विद्या-पीठ है, जहाँ प्रतिष्ठा और निवृत्ति कलाओं का उदय तथा लय होता है। यह स्थान विश्व-योनि है। यहाँ की मूल शक्तियाँ हैं—कामेश्वरी, वज्रेश्वरी और भग-मालिनी। महा-शक्ति के चार आयुधों का बड़ा रहस्य है। इस चक्र को महा-यवनिका भी कहते हैं, जिसके भीतर महा-शक्ति का विराट् मन्दिर है।

देहस्थ तालु के ऊपर 'लम्बिका-चक्र' है। उसके मध्य में अधः की ओर घण्टिका है, जहाँ से चन्द्र-कला की अमृत-धारा बहती है। उसका ध्यान करने से अमृतत्व की प्राप्ति होती है और व्याधियों का नाश होता है। यहाँ मन के स्थिर होने से किसी भी विष का प्रभाव नहीं होता और मन तुरन्त लय-भाव को प्राप्त कर अव्यक्त परम तत्व का ज्ञान हो जाता है।

इस चक्र को सूक्ष्म हृत्-कमल कहते हैं। इसमें पहले लाल रंग, उसके भीतर श्वेत रंग, श्वेत के भीतर कृष्ण रंग, कृष्ण के भीतर पीत रंग और मध्य में सहस्रों रश्मियों से युक्त महा - ज्योति है। यह महा-अग्नि है, जहाँ 'नाद' पूर्ण रूप से प्रकाशित होता है। यह चक्र अधोमुख रहता है, ध्यान के द्वारा ऊर्ध्व-मुख होकर खिलता है। यह परमानन्द का स्थान है। इस चक्र का ध्यान करने से आयु बढ़ती है।

ब्रह्म-रस से भरा हुआ यह चिदाकाश सूक्ष्म सोम, सूर्य और अग्नि का आत्म-ज्योति-मय मण्डल है। आत्म-निष्ठ योगी ही इसका ज्ञान भली भाँति प्राप्त कर पाता है। यही चक्र पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी का उद्गम स्थान है। इस चक्र के पीछे एक गुप्त चौंसठ-दल कमल है, जिसमें चौंसठ योगिनियाँ रहती हैं। उसके मध्य में चन्द्र-कला से युक्त एक अमृत-सरोवर है, जिसका ध्यान करने से योग-शक्ति प्राप्त होती है और साधक कान्तिमान् तथा दीर्घायु होता है।

लम्बिका-चक्र के ऊपर 'श्री-यन्त्र' के महा-त्र्यस्त्र का ध्यान करना चाहिये। इस चक्र का पूजन-क्रम निम्न प्रकार है—

१ मन्दिर की अर्चा।

२ बाण, शक्ति आदि चार आयुधों का पूजन।

३ प्रत्येक कोण में मूल शक्तियों—कामेश्वरी, वज्रेश्वरी और भग-मालिनी का पूजन।

४ कामेश्वरी के आगे 'त्रिपुराम्बा चक्रेश्वरी' को पूजा-प्रार्थना और 'बीज-मुद्रा' का प्रदर्शन।

देहस्थ सभी अवयव, लोक, ब्रह्माण्ड आदि सभी इस चक्र में साम्य-रस में प्रतीत होते हैं। यह चक्र दर्पण की भाँति है, जिसमें आत्म-साक्षात्कार स्पष्ट रूप से होता है।

(६)

बैन्दव पुर : सर्वानन्द-मय चक्र (देहस्थ आज्ञा-चक्र—द्वि-दल कमल)

विन्दु-रूप यह चक्र भी 'आग्नेय खण्ड' या 'प्रमातृ-पुर' है। यह ब्रह्माण्ड-बीज है। इसमें महा-शक्ति और परम शिव की साम्यता अलग-अलग भाव से है। सदानन्द-घन-परिपूर्ण स्वात्मैक्य-भाव यहाँ भरा हुआ है और प्रणव-नाद स्पष्ट रूप से प्रतिष्ठित है। शाम्भवी विद्या, कादि-हादि-सादि विद्याओं की कलायें यहाँ अनुभव में आती हैं। यहीं पर चिति सूक्ष्म रूप से विश्व-व्यापिनी होती है।

दोनों भौहों के मध्य में दो दलोंवाले कमल का 'आज्ञा-चक्र' है। एक दल में 'ह' और दूसरे में 'क्ष' अक्षर है। 'हं' हंसवती शक्ति है और 'क्षं' क्षमावती शक्ति। इस चक्र की अधिष्ठात्री है 'हाकिनी शक्ति' और 'हं'-बीज-युक्त आकाश-तत्व और 'हौं'-बीज-युक्त सदाशिवाय आकाशाधिपतये शान्त्यतीत कला है।

दोनों दलों के मध्य में आत्म-ज्योति पीत-वर्ण दीप-शिखा के समान प्रकाशित है। इस दीप-शिखा के मध्य में एक रक्त-विन्दु है। वही परमात्मा है। उसका नित्य ध्यान करने से कोटि सूर्यों के समान देदीप्यमान और कोटि चन्द्रों के समान शीतल आभावाली आत्मा प्रकाशित होती है। यह चन्द्र-सूर्य का प्रकाश नहीं है, अपितु वह प्रकाश है, जिसके द्वारा चन्द्र, सूर्य और अग्नि प्रकाश पाते हैं।

इस चक्र के ऊपर श्री-यन्त्रस्थ रक्त-विन्दु या ऊर्ध्व मूल-विन्दु का ध्यान करना चाहिये। इन दोनों विन्दुओं का मिलन ही हरि-हर-मिलन है, जहाँ देहस्थ शिव और शक्ति के अंश-विन्दु विराट् बीज शिव-शक्ति-विन्दु से मिलते हैं। यह सदाशिव-तत्व है। यहाँ त्र्यम्बक के अधिष्ठान में मृत्युञ्जय शक्ति है।

यहाँ केवल आदि-शक्ति 'ललिताम्बा' की ही 'आदि-चक्र-शक्ति' और 'चक्रेश्वरी' के रूप में पूजा-प्रार्थना कर 'योनि-मुद्रा' का प्रदर्शन किया जाता है।

योगी यहीं असत् से सत में, तम से ज्योति में और मृत्यु से अमृत में प्रवेश करता है। यह प्रचुर शक्तियों से भरा हुआ सिद्धि-प्रद स्थान है, जहाँ नाद-विन्दु की कला प्रतिष्ठित है।

इस चक्र में रात्रि के समयभगवती वार्ताली (महा-वाराही शक्ति) का ध्यान और प्रयोगादि होते हैं।

(१०)

महा-विन्दु-चक्र : परा-चक्र (देहस्थ ब्रह्म-रन्ध्र—अकुल सहस्र-दल-कमल)

यह चक्र या श्वेत-विन्दु वही स्थान है, जहाँ शुद्ध ब्रह्म में चैतन्यता का आदि स्फुरण होता है। स्थूल, सूक्ष्म और कारण—इन तीनों शरीरों से परे यह महा-कारण देह की तुरीय अवस्था है। वह न साकार है, न निराकार, न विकार-मय है, न निर्विकार और न सगुण है, न निर्गुण। वह 'महत्' के मध्य में एक अन्तरस्थ 'गुहा' है, जो निजानन्द या आत्मानन्द से भरी हुई ज्योतिर्मय है। इस अन्तर-गुहा में प्रवेश त्रिकुटी से नाद-मार्ग द्वारा होता है।

त्रिकूट के चन्द्र-सूर्य की सन्धि में पश्चिम की ओर (**द्वे मनु-स्थाने**) अधः शून्य से जहाँ तक ह्रस्व मात्रा है, ऊर्मि-कला के द्वारा खेचरी-मुद्रा से, जहाँ तारक का स्थान है और 'अ' वर्ण है, वहाँ से ऊर्ध्व स्थान की ओर, जहाँ तक दीर्घ मात्रा है, 'दण्डक काम-रूप पीठ' (श्रीहट) में धूम्री-कला द्वारा भूचरी मुद्रा से जाना पड़ता है। वहाँ 'उ' वर्ण है। वहाँ से मध्य शून्य की ओर, जहाँ तक प्लुत मात्रा है, 'कुण्डल्य जालन्धर पीठ' (गोल्हाट) में ज्योतिर्ज्वाला-कला द्वारा चाचरी-मुद्रा से जाना पड़ता है। वहाँ 'म' वर्ण है।

वहाँ से महा-शून्य की ओर, जहाँ तक ऊर्ध्व-मात्रा है, 'ऊर्ध-चन्द्र ओडचान पीठ' (औठ - पीठ) में चतुष्कला द्वारा अगोचरी-मुद्रा से जाना पड़ता है। वहाँ 'ई' वर्ण है। यहाँ अर्ध-चन्द्र चिन्मय के अन्तर्भूत होकर तुंकार-गर्जना के साथ दैवी प्रणव का शब्द होता है। विश्वोत्पत्ति का कारण-भूत स्थान यही है, जो कृष्ण-दृश्यान्तर महज्ज्योतिर्मय है। यह कृष्ण वर्ण का महा-शून्य अमृतीकरण का प्रवाह है। यहीं से 'उन्मनी' का मार्ग है। अहं-भाव का जब लय होता है, तब साधक इसी अर्ध-चन्द्र - विन्दु पर आकर स्थित होता है। यहाँ शक्ति की नौ कलायें प्रकट होकर एक विकट आवरण-मय रोधिनी-अवस्था प्राप्त होती है और सभी कलायें क्षीण हो जाती हैं।

गुरु-कृपा से रोधिनी-भेद के बाद नाद जिस विन्दु में लय होता है, वहाँ के लिए कलातीता-कला द्वारा शून्यातीत गगन से, जहाँ अनुच्चार्या मात्रा है, 'पूर्णगिरि पीठ' (पुष्याद्रि भ्रामरी गुहा) में उन्मनी मुद्रा से जाना पड़ता है। यहाँ पर 'ए' वर्ण है। मार्ग में एक व्यापिका अवस्था प्राप्त होती है, जिसका रूप त्रिकोण है, जहां वामा, ज्येष्ठा और रौद्री शक्तियां स्थित हैं। इसी के ऊपर पश्चिम मार्ग में (**द्वे बीजे**) शुद्ध ज्योतिर्मय तत्व है, जहां प्रणव की कला कोटि-चन्द्रवत् ज्योति से प्रकाश करती है। यहां प्रणव का नाद पिता के समान रक्षा करता है।

तदनन्तर क्षण मात्र के लिये समना-शक्ति उदय होती है और साधक निष्कल-भाव में पहुँच जाता है। यह शुद्ध निर्विकल्प सर्वातीत अवस्था है। यहाँ केवल एक निर्वाण-कला दिव्य चिद् - रूप से रहती है। निर्वाण-कला के क्षीण होते ही उन्मनी-स्थान आता है, जहां आत्मा का शुद्ध स्वरूप है। यहीं साधक उस तेज-विन्दु या महा-विन्दु में प्रवेश कर, जो शिव-शक्ति-मय चिद्-रूप ऊर्ध्व - मूल अक्षर-विन्दु है, अपने को सर्वाङ्ग-रूप से मिटा देता है। यहां अक्षर-विन्दु माता के समान रक्षा करता है। यह पूर्ण शून्यातीत अवस्था है। यहां जो कुछ है, वही परा-शक्ति है। इसके आगे कुछ भी नहीं।

जो साधक अन्तर-गुहा में प्रवेश कर 'महत्' के मध्य में निजानन्द—आत्मानन्द-मय होते हुये आत्मा-स्वरूप का अनुभव करता है, वह इस लोक में प्रत्यक्ष ईश्वर है। वही साकार है, निराकार है, सगुण है और निर्गुण है।

यह श्वेत विन्दु सहस्र-दल-कमल में ही है। इसे 'समस्त प्रगट-गुप्त सिद्ध-योगिनी-चक्र' कहते हैं। यहीं पर वाङ्मय-कूट-युक्त पराम्बा-सहिता प्रसिद्ध 'श्रीगुरु-पादुका' है, जिसके ध्यान मात्र से अनेक सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। इस परा-चक्र का निर्माण ३६ तत्वों से हुआ है। इसी चक्र को सदाख्य-चन्द्र-कला-रूपा श्रीपराम्बा का 'परा-चक्र' कहते हैं।

इस चक्र में 'प्रकाश'-रूपिणी परा-भट्टारिका, 'विमर्श'-रूपिणी परा-भट्टारिका, 'प्रकाश-विमर्श'-रूपिणी परा-भट्टारिका और 'महा-प्रकाश-विमर्श'-रूपिणी परा-भट्टारिका का पूजन कर कोटि-दीप्त कालाग्नि में ३६ तत्वों का अखिल-तत्व-होम भावना द्वारा किया जाता है। फिर 'श्रीगुरु-पादुका' का पूजन कर कृत-कृत्य होते हुये वर्णित क्रम के अनुसार ध्यानादि करना होता है।

महा-विन्दु के पूजन का रहस्य

'श्री-चक्र' में श्वेत-विन्दु से नव-चक्रों का जो स्फुरण होता है, उनका पूर्व-रूप उसी श्वेत-विन्दु के ही अन्तर्गत है। उस विन्दु में ही समस्त चक्रों का अन्तर्भाव है। इसी प्रकार देहस्थ सहस्र-दल-कमल में भी जो मूल विन्दु है, उसी में नीचे के आज्ञा, लम्बिका, विशुद्ध, अनाहत, मणिपूर, स्वाधिष्ठान और आधार-चक्रों का अन्तर्भाव है। विन्दु और समस्त चक्रों का एकीकरण ही सृष्टि, स्थिति और संहार का मूल कारण है। सहस्र-दल-कमल में भी भूपुर ही शक्ति-तत्व है और मध्य विन्दु शिव-तत्व है। यहीं से नाद का स्फुरण होता है।

प्रकृति के चार भेदों—१ मन, २ बुद्धि, ३ चित्त और ४ अहङ्कार—का भाव 'आधार'-चक्र के चतुर्दल-कमल में है।

माया के छः कंचुकों—१ काम, २ क्रोध, ३ लोभ, ४ मोह, ५ मद, ६ मत्सर—का भाव 'स्वाधिष्ठान' चक्र के षट्-दल-कमल में है।

'मूलाधार' और 'स्वाधिष्ठान' चक्रों के उक्त दस भावों का परस्पर सङ्गठन ही 'मणिपूर' चक्र में है। इसी से उसमें दस दल हैं। 'मणिपूर' के दस भाव और आधार तथा स्वाधिष्ठान में से प्रत्येक के विन्दु—मूल-भाव मिला कर 'अनाहत' के बारह दल कमल हो जाते हैं। 'अनाहत' और 'मूलाधार' के समस्त भाव 'विशुद्ध' के षोडश-दल कमल में हैं। 'लम्बिका' (इन्द्र-योनि) स्वतन्त्र है।

'आज्ञा-चक्र' के द्वि-दल कमल में आधार और स्वाधिष्ठान के मूल-विन्दु-भाव हैं।

सारांश यह है कि नौ चक्र एक ही विन्दु के भेद हैं, जो आदि में सहस्रार के ही अन्तर्भूत होते हैं।

आभ्यन्तर-पूजन में ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय तथा होता, अर्घ्य और हवि—इन उभय-त्रय का एकीकरण ही 'परा-पूजा' है। इसे 'निष्कल भाव-मय पूजन' कहते हैं। इसमें पर-शुद्ध चित्-स्वरूपा काम-कला की ही भावना होती है। यह पूजन उच्च अधिकारी साधकों के लिए विहित है।

नव चक्रों की तद्-रूप भावना से युक्त पूजन सकल-निष्कल पूजा है। यह मध्य श्रेणी का पूजन है, जो शुद्ध अधिकारियों के लिये है।

शरीर के प्रत्येक चक्र में 'श्री-चक्र' के प्रत्येक चक्र की भावना करते हुये प्रत्येक स्थान में पूजन-तर्पणादि करना, जैसा कि साधना-क्रम भूपुर में वर्णित है (पृष्ठ...), 'सकल-भावना-मय' पूजा है। भावना-

भेद से यह अशुद्ध-अधिकार पूजन है। इसका यह अर्थ नहीं है कि यह अग्राह्य है। इसका तात्पर्य यह है कि शुद्ध वस्तु का रूपान्तर ही अशुद्ध है और ये समस्त चक्र शुद्ध-विन्दु के ही रूपान्तर हैं।

'देवो भूत्वा यजेद् देवं' के अनुसार ही प्रत्येक आवरण का पूजन करना चाहिए।

सकल और सकल-निष्कल भावों को लेकर आदि चक्र से पूजनादि करते हुये सहस्र-दल-कमल में काम-कला-युक्त निष्कल भाव-मय पूजन निम्न प्रकार करना चाहिए—

सर्व-प्रथम निष्कल चिदानन्द-भाव में मग्न होकर सदानन्द-घन **'कामेश्वरी'** और **'कामेश्वर'** के **पूर्ण स्वात्मैक्य**-भाव का ध्यान करे।

१—बाह्य-अभ्यन्तर सब कुछ चित्-स्वरूप हो रहा है, ऐसी भावना ही 'आवाहन' है।

२—एकीभूत बाह्य-अभ्यन्तर के मध्य में विन्दु का ध्यान करना ही **'आसन'** देना है।

३—रक्त-शुक्ल विन्दुओं का एकीकरण **'पाद्य'** देना है।

४—उज्ज्वल आमोदानन्द-युक्त विन्दु की ओर लक्ष्य देना है **'अर्घ्य'**।

५—स्वयं-सिद्ध दिव्य निर्मलता का भाव: **'आचमन'**।

६—आर्द्र चित्-चन्द्र द्वारा सर्वाङ्ग में स्राव होने का भाव : **'स्नान'**।

७—परमानन्द-युक्त चिदग्नि-स्वरूप का देह से स्फुरण : **'वस्त्र'**।

८—इच्छा-ज्ञान-क्रियात्मक ब्रह्म-ग्रन्थि-मद् रस-तन्तु ब्रह्म-नाड़ी का ध्यान : **'ब्रह्म-सूत्र'**।

९—दिव्य शिव-शक्ति के एकीभूत भाव का स्मरण : **'आभूषण'**।

१०—पूर्ण सच्चिदानन्द-भाव से स्मरण करना ही **'गन्ध'** लगाना है।

११—मन और समस्त विषयों का समष्टि-भूत एकाग्र भाव ही **'पुष्प'** चढ़ाना है।

१२—सर्वदा स्वीकरण का भाव : 'धूप' का आघ्रापण।

१३—सच्चिद् उल्काकाश-देह की ज्योति पवन से अवच्छिन्न ऊर्ध्व की ओर जाती है, ऐसा ध्यान करना ही है : 'दीप' प्रदर्शन।

१४—समस्त द्वैत-भाव का विसर्जन : **'नैवेद्य'**।

१५—सहस्र-दल से मूलाधार और मूलाधार से सहस्रार-दल तक भ्रमण की भावना : **'प्रदक्षिणा'**।

१६—तुरीय अवस्था का ध्यान : **'नमस्कार'**।

१७—देह-शून्य की भावना : **'बलि'**-प्रदान।

१८—सत् में होकर उदासीन-भाव से यह ध्यान करना कि कर्तव्य और अकर्तव्य सब आत्मा में लय हो रहे हैं : 'हवन'।

१९—पादुका में निमज्जन ही है : परिपूर्ण 'ध्यान'।

उर्युपक्त भावनाओं में जो साधक तीन मुहूर्त तक एकाग्र रह सकते हैं, वे ही 'जीवन्मुक्त' हैं। उन्हें आत्मैक्य की सिद्धि होती है, साथ ही उनके चिन्तित सभी कार्य भी यत्न करने से क्रमशः सिद्ध हो जाते हैं। ऐसे दिव्य साधक 'शिव-योगी' कहलाते हैं।

पञ्चाङ्ग-पाठ

सूर्योदय के पूर्व ब्राह्म-मुहूर्त में **'श्री-विद्या'** के १ कवच, २ हृदय, स्तवन, ३ शत-नाम, ४ शतनाम और ५ सहस्रनाम,'उपनिषद्–इन पांच अङ्गों का पाठ करने से 'श्री-यन्त्र' की उपासना का उत्तम अधिकार प्राप्त होता है।

श्री-चक्र और दशमहा-विद्यायें

'श्री-चक्र' के विविध स्थानों में दश-महा-विद्याओं की प्रतिष्ठा है। जो साधक 'श्री-चक्र' का लक्ष्य लेकर उपयुक्त चक्रों में महा-विद्याओं का प्रयोग करना जानते हैं, वे विशिष्ट सिद्धियों से सम्पन्न होते हैं और उनकी बड़ी महिमा होती है।

१ अकुल अधः सहस्र-दल-कमल : यन्त्रस्थ भूपुर

इसमें भगवती 'धूमावती' का ध्यान, प्रयोगादि होता है। इनका दूसरा नाम 'अलक्ष्मी' है। यह महा-विद्या 'दारुण-रात्रि' की अधिष्ठात्री विद्या है। यह स्वतन्त्र शक्ति है और इसे 'विधवा' भी कहते हैं।

२ कुल षट्-दल-कमल : यन्त्रस्थ षोडश-दल-कमल

इसमें भगवती 'वगलामुखी' का 'एक-वक्त्र महा-देव' के सहित ध्यान, प्रयोगादि होता है। इन्हें 'पीताम्बरा' कहते हैं। यह महा-विद्या 'वीर-रात्रि' की अधिष्ठात्री सिद्ध-विद्या है।

३ आधार-चक्र चतुर्दल-कमल : यन्त्रस्थ अष्ट-दल-कमल

इसमें भगवती 'भैरवी' का भगवान् 'दक्षिणामूर्ति' (काल-भैरव) के सहित ध्यान, प्रयोगादि होता है। इन्हें 'त्रिपुर-भैरवी' भी कहते हैं। यह महा-विद्या 'काल-रात्रि' की अधिष्ठात्री सिद्ध-विद्या है।

४ स्वाधिष्ठान -चक्र षट्-दल-कमल : यन्त्रस्थ चतुर्दशार

इसमें भगवती 'भुवनेश्वरी' का भगवान् 'त्र्यम्बक' के सहित ध्यान, प्रयोगादि होता है। यह महा-विद्या 'सिद्ध-रात्रि' की अधिष्ठात्री सिद्ध-विद्या है। इन्हें 'राज-राजेश्वरी' भी कहते हैं।

५ मणिपूर-चक्र दशकल-कमल : यन्त्रस्थ वहिर्दशार

इसमें भगवती 'कमला' का भगवान् 'सदा-शिव विष्णु' के सहित ध्यान, प्रयोगादि होता है। यह महा-विद्या 'महा-रात्रि' की अधिष्ठात्री विद्या है।

६ अनाहत चक्र द्वादश-दल-कमल : यन्त्रस्थ अन्तर्दशार

इसमें भगवती मातङ्गी का भगवान् 'मतङ्ग' के सहित ध्यान, प्रयोगादि होता है। इन्हें 'श्यामा' और 'सुमुखी' भी कहते हैं। 'लघु श्यामा,' 'शुक्ल श्यामा' आदि इन्हीं के भेद हैं। यह महा-विद्या 'मोह-रात्रि' की अधिष्ठात्रीं विद्या है। यह भगवती ललिता की 'मन्त्रिणी' है।

७ विशुद्ध-चक्र षोडश-दल-कमल : यन्त्रस्थ अष्टार

इसमें भगवती 'तारा' का भगवान् 'अक्षोभ्य' के सहित ध्यान, प्रयोगादि होता है। 'नील-सरस्वती,' 'उग्र-तारा', 'वाग्-देवी' आदि इन्हीं के भेद हैं। यह महा - विद्या 'क्रोध-रात्रि' की अधिष्ठात्री विद्या है।

८ लम्बिका (इन्द्र-योनि) अष्ट-दल-कमल : यन्त्रस्थ महा-त्र्यस्र

इसमें भगवती 'छिन्नमस्ता' का भगवान् 'कबन्ध' के सहित ध्यान, प्रयोगादि होता है। यह महा-विद्या 'वीर-रात्रि' की अधिष्ठात्री विद्या है।

९ आज्ञा-चक्र द्वि-दल-कमल : यन्त्रस्थ रक्त-विन्दु

इसमें भगवती 'षोडशी' का भगवान् 'पञ्च-वक्त्र कामेश्वर' के सहित ध्यान, प्रयोगादि होता है। 'बाला', 'त्रिपुर-सुन्दरी' और 'त्रिपुरा' इन्हीं के भेद हैं। यह महा-विद्या 'दिव्य-रात्रि' की अधिष्ठात्री

सिद्ध-विद्या है ।

१० सहस्र-दल-कमल : यन्त्रस्थ श्वेत-विन्दु

इसमें भगवती 'काली' का भगवान् 'महा-काल' के सहित ध्यान, प्रयोगादि होता है। 'भद्र-काली', 'श्मशान-काली', 'दक्षिणा काली', 'मधुमती' इत्यादि इन्हीं के भेद हैं। यह 'महा-रात्रि' की अधिष्ठात्री महा-विद्या है ।

श्री-चक्र में भगवती दुर्गा

भगवती दुर्गा का मूल अस्तित्व निष्कल-ब्रह्म-मय है। यह परा-शक्ति का ही रूपान्तर है चौदह भुवन-रूपी ब्रह्माण्ड-दुर्ग की अधिष्ठात्री को 'दुर्गा' कहते हैं। भक्त के लिए दुर्गा-दुर्गति - नाशिनी है। यह पूर्ण ब्रह्म की 'योग-माया' या महा-माया' है। इस शक्ति का स्मरण करने से 'श्री-विद्या' की उपासना अतिशय फल-प्रद होती है ।

भगवती दुर्गा कोटि-सूर्य-प्रभा से युक्त, नाना-रत्न-मय, विस्तृत 'जय' नामक महान् दिव्य भुवन में रहती हैं । कहा है—

इदं दिव्यं जयं नाम भुवनं परमेश्वरि ! तत्रैव वसते दुर्गा नव - रूपात्मिका परा ।
जयं नाम महा-दिव्यं बहु-विस्तार-विस्तृतं । नाना रत्न-समाकीर्णं सूर्य-कोटि-सम-प्रभम् ।
अप्रमेयमसंख्येयमगम्यं सर्व-वादिनम् ।।

'दुर्गा' का स्मरण करने से 'नाद' और 'विन्दु' सिद्ध होते हैं। नव-रूपात्मिका शक्ति होने से वह 'नव-दुर्गा रूप में ही जाती है, जिन्हें १ शैल-पुत्री, २ ब्रह्म-चारिणी, ३ चन्द्र - घण्टा, ४ कूष्माण्डा, ५ स्कन्द-माता, ६ कात्यायनी, ७ काल-रात्रि, ८ महा-गौरी और ९ सिद्धि-दात्री कहते हैं। 'दुर्गा' का भजन कर शिव पञ्च-नादात्मक होकर परा-विद्या का ज्ञान प्रदान करते हैं । यथा—

दुर्गा भजति स शिवः पञ्च-नादात्मको भवेत् । ततो जप्त्वा परा-विद्यामसज्जगदम्बिके !

महा-लक्ष्मी, महा-काली और महा-सरस्वती—ये तीन शक्तियाँ श्री दुर्गा के ही रूपान्तर हैं।

अस्तु, उक्त शक्तियों का ध्यान, मन्त्र-प्रयोगादि 'अनाहद चक्र' में निम्न क्रम से करना चाहिये—

दुर्गा
↓
↓ ↓ ↓
महा-सरस्वती **महा-लक्ष्मी** **महा-काली**

'श्री-चक्र' का लक्ष्य लेते हुए जो साधक उक्त शक्तियों का मन्त्र-प्रयोगादि करते हैं, वे परम सिद्ध योगीन्द्र होते हैं ।

श्री-चक्र का लेखन-विधान

विन्दु→त्रिकोण—अष्ट-कोण—अन्तर्दश कोण—बहिर्दश कोण—चतुर्दश कोण—अष्ट-दल—षोडश-दल—तथा भूपुर—ये सब मिल कर 'श्री-चक्र' में नौ चक्र होते हैं।

ईशान से आग्नेय तक और वायव्य से नैऋत्य तक जो रेखायें मिलती हैं, उन्हें **तिर्यक् रेखा** कहते हैं। 'तिर्यक्' अर्थात् तिरछी।

त्रिकोण की दो रेखायें, जो पूर्व - कोण या पश्चिम-कोण में मिलती हैं, उन्हें **'पार्श्व - रेखायें'** कहते हैं। 'पार्श्व' अर्थात् बगल या किनारे की।

एक रेखा के ऊपर दूसरी रेखा जिस विन्दु पर मिलती है, उसे **'सन्धि'** कहते हैं। जिस स्थान पर तीन रेखायें मिलती हैं, उसे **'मर्म'** कहते हैं। **'मर्म'** और 'सन्धि' को ही **'ग्रन्थि'** कहते हैं। उत्तर से दक्षिण की ओर जो दो पार्श्व-रेखायें, एक ऊपर को और एक नीचे को होती है, उनके मध्य-कोण को 'डमरु' कहते हैं। गोल रेखा को **'वृत्त'** और चतुरस्र को 'भूपुर' कहते हैं।

यन्त्र-लेखन के समय पूर्व - दिशा लेखक के सम्मुख, पश्चिम उसके नीचे, दक्षिण उसके दाहिने हाथ की ओर, उत्तर बायें हाथ को ओर और इसी के अनुसार क्रमशः आग्नेय, नैऋत्य, वायव्य और ईशान विदिशायें होंगो। देखिये चित्र-संख्या १—

(१)

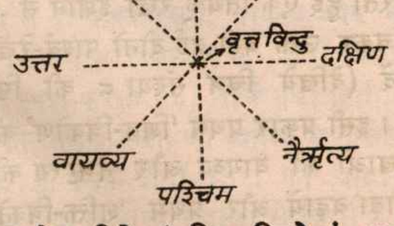

अब सबसे पहिले 'शक्ति - त्रिकोण'—अधोमुख त्रिकोण बनायें। इसके लिए वृत्त - विन्दु से ऊपर ५ अंश पर और वृत्त - विन्दु से नीचे ५ अंश पर ईशान से आग्नेय तक और वायव्य से नैऋत्य तक यन्त्र के प्रमाण से कम अथवा अधिक एक-एक तिर्यक् रेखा खींचें। देखिये चित्र-सं० २ की छिद्र-युक्त (...) तिर्यक् रेखायें—

(२)

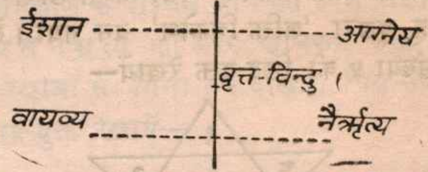

फिर वायव्य से नैऋत्य तक जो तिर्यक् रेखा है, उसके मध्य में एक विन्दु देकर उस विन्दु से दो पार्श्व-रेखायें—एक ईशान की ओर और एक आग्नेय को ओर खींचकर, ईशान से आग्नेय तक जो तिर्यक् रेखा खींची हुई है, उससे मिला दें। यह अधो-मुख 'शक्ति-त्रिकोण' बन गया। देखिये चित्र संख्या ३ की छिद्र-युक्त रेखायें—

(३)

इसके बाद ईशान से आग्नेय तक जो तिर्यक् रेखा खींची हुई है, उसके मध्य भाग से ३ अंश ऊपर एक विन्दु देकर उस विन्दु से दो पार्श्व-रेखायें एक वायव्य की ओर और दूसरी नैऋत्य की ओर खींचकर वायव्य से नैऋत्य तक खींची हुई तिर्यक् रेखा से मिला दें। यह ऊर्ध्व-मुख 'शिव - त्रिकोण' बन गया। देखिये चित्र ४ की छिद्र-युक्त रेखायें—

(४)

पुनः उत्तर से दक्षिण तक एक तिर्यक् रेखा ऊर्ध्व व अधः दोनों त्रिकोणों के मध्य की सन्धियों को भेदन करते हुये खींचें और वायव्य से नैर्ऋत्य तक खींची हुई तिर्यक् रेखा के मध्य भाग के तीन अंश नीचे एक विन्दु रखकर, उस विन्दु से दो पार्श्व-ईशान-आग्नेय की तरफ रेखायें खींचकर उत्तर-दक्षिणवाली उक्त तिर्यक् रेखा के से छोरों मिला दें। यह दूसरा 'शक्ति-त्रिकोण' बन गया। देखिये चित्र-संख्या ५ की छिद्र-युक्त रेखायें—

(५)

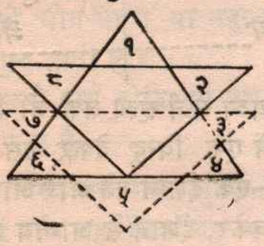

चित्र ५ के मध्य में जो अधोमुख त्रिकोण दिखता है, वही 'महा-त्र्यस्र चक्र' है। उस मध्यस्थ त्रिकोण के मध्य में पुनः एक विन्दु रख देने से वहीं 'विन्दु-चक्र' होगा। इस प्रकार चित्र-संख्या ५ तक विन्दु-चक्र, महा-त्र्यस्र और अष्टार-चक्र बन गये। इसमें जो नौ त्रिकोण स्पष्ट बन गये हैं, उन्हें ही 'नव-योनि-चक्र' कहते हैं। इसमें छः सन्धियाँ, दो डमरू और दो मर्म हैं।

'अन्तर्दशार-चक्र' बनाने के लिये 'अष्टार-चक्र' के प्रथम 'शक्ति-त्रिकोण' के तीन अंश नीचे सोधान पर एक बिन्दु रखकर उस विन्दु से दो पार्श्व-रेखायें ईशान और आग्नेय की ओर (वायव्य और नैर्ऋत्य के दोनों त्रिकोणों के कोणों को स्पर्श करती हुई) खींचें तथा ईशान और आग्नेय की ओर दूसरे 'शक्ति-त्रिकोण' की जो तिर्यक् रेखा है, उसके दोनों छोरों को थोड़ा-थोड़ा बढ़ाकर इन दोनों खींची हुई पार्श्व-रेखाओं से मिला दें। देखिये चित्र-संख्या ६ की छिद्र-युक्त रेखायें।

इसी प्रकार 'अष्टार-चक्र' के प्रथम 'शिव-त्रिकोण' के तीन अंश ऊपर एक विन्दु रखकर उस विन्दु

चित्र (६)

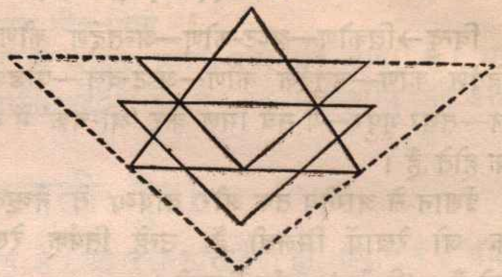

से दो पार्श्व-रेखायें वायव्य और नैर्ऋत्य की ओर (ईशान और आग्नेय के दोनों त्रिकोणों के कोणों को स्पर्श करतीहुई) खींचें तथा वायव्य और नैर्ऋत्य की ओर प्रथम 'शिव-त्रिकोण' की जो तिर्यक् रेखा है, उसके दोनों छोरों को थोड़ा-थोड़ा बढ़ा कर इन दोनों खींची हुई पार्श्व - रेखाओं से मिला दें। देखिये चित्र-संख्या ७ की छिद्र-युक्त रेखायें—

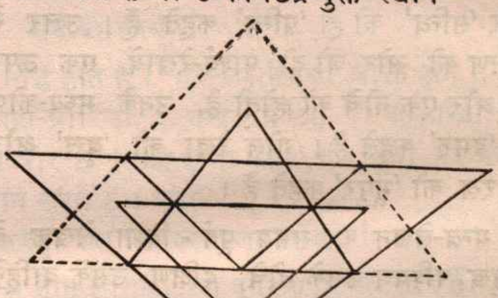

७

इसके पश्चात् द्वितीय शक्ति-त्रिकोण को दोनों पार्श्व-रेखाओं को ईशान-आग्नेय की तरफ थोड़ा-थोड़ा बढ़ायें और प्रथम शिव-त्रिकोण के पूर्व कोण को स्पर्श करती हुई एक तिर्यक् रेखा ईशान से आग्नेय तक खींचकर उक्त बढ़ी हुई दोनों पार्श्व-रेखाओं से मिला दें (देखिये चित्र संख्या ८ की छिद्र-युक्त रेखायें)। इसी प्रकार प्रथम 'शिव-त्रिकोण' की दोनों पार्श्व-रेखाओं को वायव्य और नैर्ऋत्य की ओर थोड़ा-थोड़ा बढ़ायें और प्रथम 'शक्ति-त्रिकोण' के पश्चिम कोण को स्पर्श करती हुई एक तिर्यक्-रेखा वायव्य से नैर्ऋत्य तक खींचकर उक्त दोनों बढ़ी

हुई पार्श्व-रेखाओं से मिला दें। इस प्रकार 'अन्तर्दशार-चक्र' बन जायेगा। देखिये चित्र सं० ८ की छिद्र-युक्त रेखायें—

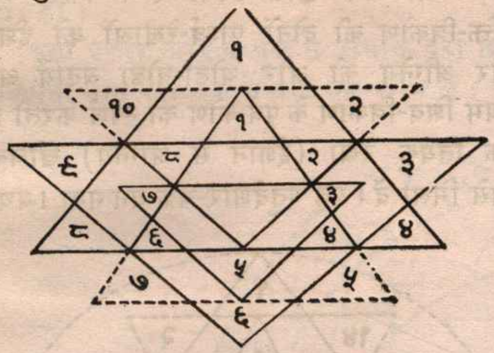

८

इस अन्तर्दशार-चक्र में तीन शक्ति-त्रिकोण और दो शिव-त्रिकोण हैं। चारों ओर दश छोटे-छोटे त्रिकोण हैं। ६ सन्धि, ४ मर्म और २ डमरू हैं।

'बहिर्दशार-चक्र' बनाने के लिये अन्तर्दशार-चक्र के प्रथम शक्ति-त्रिकोण के पश्चिम-कोण के पाँच अंश नीचे ठीक सिधान पर एक विन्दु देकर उस विन्दु से दो पार्श्व-रेखायें ईशान और आग्नेय की ओर (वायव्य के दोनों त्रिकोणों और नैर्ऋत्य के दोनों त्रिकोणों के कोणों को स्पर्श करती हुई) खींचें तथा तृतीय शक्ति-त्रिकोण की तिर्यक् रेखा, जो ईशान से आग्नेय तक खींची हुई है, उसके दोनों छोरों को थोड़ा-थोड़ा बढ़ाकर उक्त दोनों पार्श्व-रेखाओं से मिला दें।

इसी प्रकार प्रथम शिव-त्रिकोण के पूर्व-कोण के पाँच अंश ऊपर ठीक सिधान पर एक विन्दु रक्खें। उस विन्दु से दो पार्श्व-रेखायें वायव्य और नैर्ऋत्य की ओर (ईशान और आग्नेय के दोनों त्रिकोणों के कोणों को स्पर्श करती हुई) खींचें तथा द्वितीय शिव त्रिकोण की तिर्यक् रेखा, जो वायव्य से नैर्ऋत्य तक खिंची हुई है, उसके दोनों छोरों को थोड़ा-थोड़ा बढ़ाकर उक्त दोनों पार्श्व-रेखाओं से मिला दें।

इसके बाद तृतीय शक्ति-त्रिकोण की दोनों पार्श्व-रेखाओं को ईशान और आग्नेय की ओर थोड़ा-थोड़ा बढ़ा लें और एक तिर्यक् रेखा प्रथम शिव-त्रिकोण के पूर्व-कोण को स्पर्श करती हुई, ईशान से आग्नेय की ओर खींचकर उक्त दोनों पार्श्व-रेखाओं से मिला दें।

ऐसे ही द्वितीय शिव-त्रिकोण की दोनों पार्श्व-रेखाओं के वायव्य और नैर्ऋत्य की ओर थोड़ा-थोड़ा बढ़ा लें और एक तिर्यक् रेखा प्रथम शक्ति-त्रिकोण के पश्चिम कोण को स्पर्श करती हुई, वायव्य से नैर्ऋत्य की ओर खींचकर उक्त दोनों पार्श्व-रेखाओं से मिला दें। देखिये, चित्र-संख्या ९ की छिद्र-युक्त रेखायें—

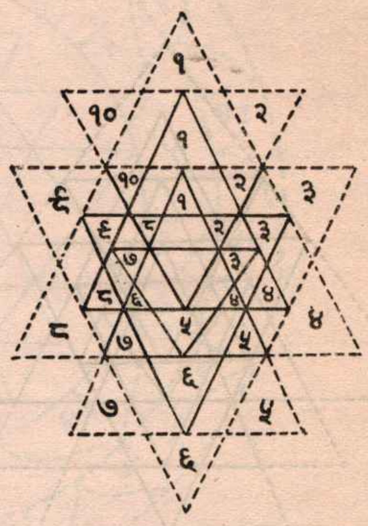

९

इस प्रकार बहिर्दशार चक्र बन जायेगा। इसमें चार शक्ति-त्रिकोण तीन शिव-त्रिकोण, चार मर्म, छः सन्धि और दो डमरू हैं।

चतुर्दशार-चक्र बनाने के लिये बहिर्दशार चक्र के प्रथम शिव-त्रिकोण के पूर्व-कोण के छः अंश ऊपर ठीक सिधान में एक विन्दु रखें और उस विन्दु से दो पार्श्व-रेखायें वायव्य और नैर्ऋत्य की ओर (ईशान के दोनों त्रिकोणों और आग्नेय के दोनों त्रिकोणों के कोणों को स्पर्श करती हुई) डमरू के नीचे भाग तक खींचें। फिर प्रथम शिव-त्रिकोण की तिर्यक् रेखा (जो वायव्य से नैर्ऋत्य की ओर डमरू के नीचे भाग से गई है) को थोड़ा-थोड़ा बढ़ाकर उक्त दोनों पार्श्व-रेखाओं से मिला दें।

इसके बाद बहिर्दशार - चक्र के प्रथम शिव-त्रिकोण की दोनों पार्श्व-रेखाओं को वायव्य और नैर्ऋत्य की ओर बढ़ावें तथा तृतीय शिव - त्रिकोण की तिर्यक् रेखा के दोनों छोरों को थोड़ा-थोड़ा बढ़ा कर उक्त पार्श्व-रेखाओं से मिला दें। पुनः तृतीय शिव-त्रिकोण की दोनों पार्श्व-रेखाओं को वायव्य और नैर्ऋत्य की ओर बढ़ावें और प्रथम शक्ति-त्रिकोण के पश्चिम-कोण को स्पर्श करती हुई एक तिर्यक् रेखा (वायव्य से नैर्ऋत्य) खींच कर उससे मिला दें। देखिये, चित्र-संख्या १० की छिद्र - युक्त रेखायें—

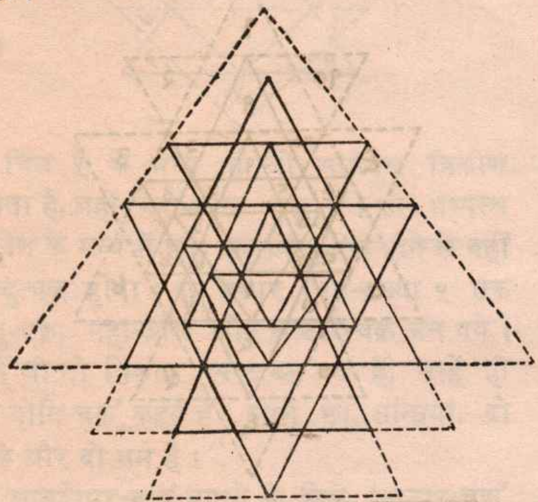

१०

अव इसी प्रकार बहिर्दशार - चक्र के प्रथम शक्ति-त्रिकोण के पश्चिम-कोण के छः अंश नीचे ठीक सिधान में एक विन्दु रक्खें और उस विन्दु से दो पार्श्व-रेखायें ईशान और आग्नेय की ओर (वायव्य के दोनों त्रिकोणों और नैर्ऋत्य के दोनों त्रिकोणों के कोणों को स्पर्श करती हुई) बहिर्दशार के डमरू के ऊर्ध्व-भाग तक खींचें। फिर प्रथम शक्ति-त्रिकोण की तिर्यक् रेखा के दोनों छोरों को थोड़ा-थोड़ा बढ़ाकर पार्श्व-रेखाओं से मिला दें।

इसके बाद प्रथम शक्ति-त्रिकोण की दोनों पार्श्व-रेखाओं को (जो डमरू के ऊपरी भाग तक जाती हैं) ईशान और आग्नेय की ओर थोड़ा-थोड़ा बढ़ावें और चतुर्थ शक्ति-त्रिकोण की तिर्यक् रेखा के दोनों छोरों को भी ईशान और आग्नेय की ओर थोड़ा-थोड़ा बढ़ा कर उनसे मिला दें। फिर चतुर्थ शक्ति-त्रिकोण की दोनों पार्श्व-रेखाओं को ईशान और आग्नेय की ओर थोड़ा-थोड़ा बढ़ायें और प्रथम शिव-त्रिकोण के पूर्व-कोण को स्पर्श करती हुई एक तिर्यक् रेखा (ईशान से आग्नेय) खींचकर उससे मिला दें। यह चतुर्दशार-चक्र बन गया। यथा—

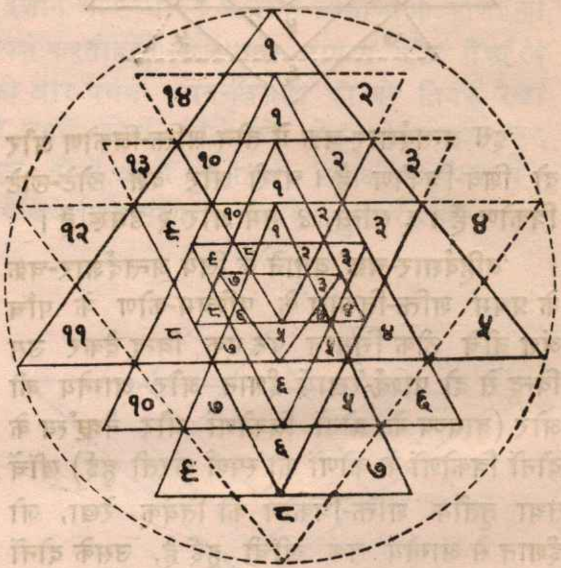

उक्त चित्र सं० ११ में पाँच शक्ति-त्रिकोण और चार शिव-त्रिकोण हैं। आठ मर्म, छः सन्धि व दो डमरू हैं। इन सबके बाहर वृत्त-विन्दु से एक वृत्त खींच लें, जो प्रथम शिव-त्रिकोण के पूर्व-कोण को तथा प्रथम शक्ति-त्रिकोण के पश्चिम-कोण को और दोनों ओर के दोनों डमरुओं के दो-दो कोणों को स्पर्श करता हुआ हो। देखिये, ऊपर चित्र-सं० ११ का छिद्र-युक्त वृत्त।

वृत्त के ऊपर व नीचे समान दूरी छोड़कर पुनः एक वृत्त खींचें (मतान्तर से आधे सूत के अन्तर पर दो वृत्त खींचे जाते हैं)। फिर दोनों वृत्तों के मध्य में, जो ऊपर-नीचे, दायें-बायें समान स्थान है, उसे

बराबर-बराबर आठ भागों में बाँट कर अष्ट-दल-कमल बना लें। ध्यान रहे कि चारों दिशाओं में दल के मुख या कोण भूपुर के मध्य द्वार की ओर हों।

इसी प्रकार ऊपर के वृत्त से समान दूरी छोड़कर पुनः तीन वृत्त एक के बाद एक खींच लें। फिर जो ऊपर-नीचे, दायें-बायें समान रिक्त स्थान है, उसे बराबर-बराबर सोलह भागों में बाँटकर सोलह--दल का कमल बना लें। यहाँ पर भी चारों दिशाओं में दल के मुख या कोण भूपुर के मध्य द्वार की ओर हों। देखिये, चित्र-संख्या १२ की छिद्र-युक्त वृत्त की रेखायें—

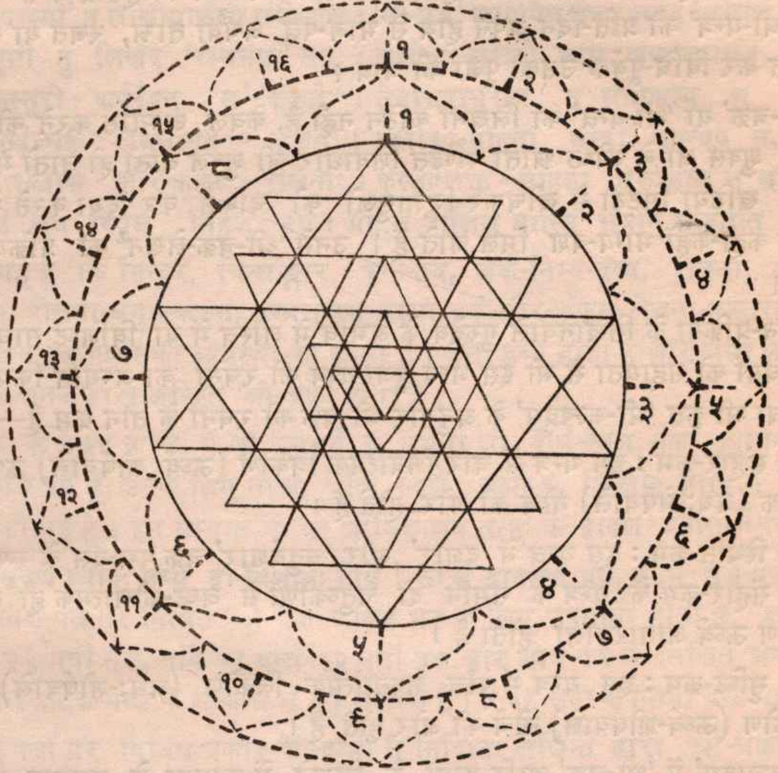

अन्त में सबसे ऊपर के वृत्त से चार-चार अंश ऊपर-नीचे और दायें-बायें समान स्थान छोड़कर चार द्वारों से युक्त तीन रेखाओंवाला भूपुर खींच लें। इस प्रकार 'श्री-चक्र' प्रस्तुत हो जाता है।

समस्त चक्र बहत्तर अंश का होता है, जिसकी गणना इस प्रकार है—

	ऊपर अंश	नीचे अंश
वृत्त-विन्दु से ऊपर और नीचे चौथी और छठवीं तिर्यक् रेखा	५॥	५॥
तीसरी और आठवीं तिर्यक् रेखा	३	३
दूसरी और आठवीं तिर्यक् रेखा	३	३
प्रथम और नवम तिर्यक् रेखा	५	५
सबसे ऊपर और नीचे का (शिव-शक्ति) त्रिकोण ...	६	६
अष्ट-दल कमल	४॥	४॥
षोडश-दल कमल	५	५
भूपुर	४	४

कुल ३६+३६=७२ अंश

श्री-चक्र का लेखन या उत्कीर्णन

'श्री-चक्र' की महिमा से प्रभावित होकर प्रायः भक्त-जन ताम्रादि पत्रों पर उत्कीर्ण कराए हुए 'श्री-यन्त्र' अपने पूजा-गृह में श्रद्धा-पूर्वक स्थापित करते हैं और गन्ध-धूप-दीपादि से उसकी पूजा कर अपने को कृतार्थ मानते हैं। इस प्रकार के बने-बनाये 'श्री-चक्र' की विधि-पूर्वक प्राण-प्रतिष्ठा किन्हीं पूर्णाभिषिक्त श्रीविद्योपासक द्वारा करा लेना आवश्यक होता है अन्यथा उससे वांछित लाभ प्राप्त नहीं होता। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि उत्तम विधि यही है कि रक्त-चन्दनादि विहित द्रव्य से दाड़िमादि प्रशस्त लेखनी द्वारा 'श्री-यन्त्र' को प्रति-दिन अपने हाथ से भोज-पत्र अथवा ताम्र, रजत या स्वर्णादि के विहित पत्र पर अङ्कित कर विधि-पूर्वक उसकी पूजा की जाय।

'श्री-चक्र' या 'श्री-यन्त्र' का लिखना कठिन नहीं है, केवल अभ्यास करने की आवश्यकता है। 'कौल-कल्पतरु' शुक्ल जी के ज्येष्ठ भ्राता पण्डित शिवाधार जी शुक्ल बातों ही बातों में, कुछ ही क्षणों में पूरा 'श्री-यन्त्र' खड़िया मिट्टी से खींचकर जिज्ञासुओं को चकित कर दिया करते थे। ऐसे साधको के दर्शन आज भी कहीं-कहीं भाग्य-वश मिल जाते हैं। उनसे 'श्री-चक्र-लेखन' की प्रक्रिया सहज ही सीखी जा सकती है।

लेखन-प्रक्रिया के सिखानेवाले गुरुदेव के अभाव में शास्त्र में या विशिष्ट साधकों की कृतियों में लिखी हुई विधियों की सहायता से भी इस भव्य पूजा-यन्त्र की रचना का अभ्यास किया जा सकता है गुप्तावतार बाबा श्री कृत 'श्री-कल्पद्रुम' के अनुसार श्री-चक्र की रचना के तीन क्रम हैं—

(१) **संहार-क्रम :** इस यन्त्र में चार शिवात्मक त्रिकोण (ऊर्ध्व शीर्षवाले) ऊपर की ओर और पाँच शक्त्यात्मक (अधःशीर्षवाले) नीचे की ओर होते हैं।

(२) **स्थिति-क्रम :** इस यन्त्र में 'दशार' और 'चतुर्दशार' चक्र पद्म-दल के रूप में लिखे जाते हैं तथा 'अष्टार' संहार-क्रम के यन्त्र के समान दो चतुष्कोणों से अष्ट-कोणात्मक ही बनाया जाता है। मध्य का त्रिकोण ऊर्ध्व आधारवाला होता है।

(३) **सृष्टि-क्रम :** इस यन्त्र में पाँच शक्त्यात्मक त्रिकोण (अधः-शीर्षवाले) ऊपर और चार शिवात्मक त्रिकोण (ऊर्ध्व-शीर्षवाले) नीचे की ओर होते हैं।

'श्रीकल्पद्रुम' में 'श्री-चक्र' आदि यन्त्रों के लिखने में कामना के अनुसार विभिन्न द्रव्यों का उल्लेख है। यथा—१ चन्दन, रोचना शान्ति-कर्म में, २ हल्दी स्तम्भन-कर्म में, ३ अष्ट-विष (पिप्पली, मरिच, शुण्ठी, श्येन-विष्ठा, चित्रक, गृह-धूम, उन्मत्त-रस और लवण) मारण-कर्म में प्रशस्त हैं। इसी प्रकार शान्ति और वश्य हेतु भोज-पत्र, स्तम्भन-कर्म हेतु हस्ति-चर्म, विद्वेषण हेतु गर्दभ-चर्म, उच्चाटन-कर्म हेतु ध्वज-वस्त्र विहित है। वहीं विविध प्रकार की लेखनी बताई हैं। यथा—१ शान्ति-कर्म में स्वर्ण, रजत या जाती-वृक्ष की बनी, २ वश्य-कर्म में दूर्वांकुर की बनी, ३ स्तम्भन में अगस्त्य वृक्ष की बनी, ४ विद्वेषण-कर्म में राज-वृक्ष या करञ्ज की बनी, ५ उच्चाटन में विभीतक की और ६ मारण में नरास्थि की बनी लेखनी काम में लाई जाती है।

'हिन्दी-तन्त्रसार', पृष्ठ ३८३ पर 'श्री-यन्त्र' के लेखन के सम्बन्ध में लिखा है कि—

पशु-भावावलम्बी की दृष्टि न पड़े, इस प्रकार सतर्क होकर यन्त्र को अङ्कित करे।''' यन्त्र के पद्मों में केशर न बनावे। '''' रात्रि-काल में यन्त्र को न लिखे।''''

'श्री श्रीविद्यार्णव तन्त्र' के एकादश श्वास में विविध द्रव्यों से रचित 'चक्र' में पूजा करने का फल लिखा है। यथा—

'सिन्दूर'-रचिते चक्रे राजानं मोहयेत् क्षणात्। त्रैलोक्य-दुर्लभां चापि रम्भां वाकर्षयेद् द्रुतम्॥
'चिताङ्गारेण' चक्रं तु लिखेद् 'रक्त'-द्रवेण हि। बध्वा बाहावथ क्वापि ज्वरं नाशयति क्षणात्॥
'अर्क-निम्ब-द्रव्याभ्यां' तु लेखिन्यार्कस्य संलिखेत्। 'गो-मूत्रे' स्थापयेत् तच्च भवेद् विद्वेषणं क्षणात्॥
लिप्त-गोमय-भूमौ तु लिखेद् 'रोचनया' ततः। त्रैलोक्य-सुन्दरी नाम क्षणादायाति मोहिता।
'श्रीखण्डाग्रह-कस्तूरी - कर्पूरैश्च 'स'-'कुंकुमैः'। तेनाजरामरत्वं तु साधकस्य न संशयः॥
भूर्ज - पत्रे लिखेच्चक्रं 'रोचनागुरु - कुंकुमैं'। त्रैलोक्य-मोहनो मन्त्री भवत्येव न संशयः॥
'उन्मत्त-रस - लाक्षार्क - क्षीर-कुंकुम - रोचनाः। कस्तूर्यलक्त'- सहिता एकीकृत्य तु संलिखेत्॥
ग्रहजं व्याधिजं चैव रिपुजं सिंहजं भयं। अहिजं वाजिजं वास्ति सर्वान् मोहयति क्षणात्॥

सारांश यह है कि सिन्दूर, चिताङ्गार, रक्त-द्रव, अर्क-निम्ब-द्रव्य, रोचना, श्रीखण्ड-अगरु-कस्तूरी-कर्पूर-कुंकुम, रोचना-अगुरु-कुंकुम, उन्मत्त-रस-लाक्षा-अर्क-क्षीर-कुंकुम-रोचना-कस्तूरी-अलक्त आदि अनेक प्रकार से लेखन हेतु द्रव्यों की व्यवस्था की जाती है। जैसा द्रव्य होता है और जैसी लेखनी होती है, वैसा ही फल-दायक उनके द्वारा अङ्कित 'श्री-चक्र' होता है।

'श्री-चक्र' के लेखन करने में जो असमर्थ हैं अथवा जो दीर्घ-काल तक उपयोग में लानेवाले 'श्री-चक्र' की इच्छा रखते हैं, उनके लिए ताम्र, चाँदी, स्वर्ण, स्फटिक, त्रि-लौह आदि में उसके निर्माण की विधि निर्दिष्ट की गई है। इस सम्बन्ध में 'श्री श्रीविद्यार्णव तन्त्र' के द्वादश श्वास में लिखा है कि—

यावज्जीवं सुवर्णे स्याद्, रूप्ये द्वा-विंशतिः प्रिये ! ताम्रे द्वादशकं वर्षं, तदर्धं भूर्ज-पत्रके॥

अर्थात् स्वर्ण-पत्र पर निमित 'श्री-चक्र' जीवन भर के लिए उपयोगी होता है, जब कि चाँदी के पत्र पर बना यन्त्र २२ वर्षों तक, ताँबे का यन्त्र १२ वर्षों तक और भोज-पत्र में लिखित मन्त्र ६ वर्षों तक कार्य देता है। वहीं स्फटिक-मन्त्र के सम्बन्ध में यह उल्लेख है कि वह सदा उपयोगी बना रहता है।

स्वर्णादि पत्रों पर विविध प्रकार के द्रव्यों से निर्दिष्ट लेखिनी द्वारा 'श्री-चक्र' के लिखने की विधि के अतिरिक्त उन पर उसे उत्कीर्ण किए जाने का भी विधान है। इस सम्बन्ध में उक्त तन्त्र में तीन प्रकार के 'प्रस्तार' बताए हैं—१ भू-प्रस्तार, २ अर्ध-मेरु-प्रस्तार, ३ मेरु-प्रस्तार।

'भू-प्रस्तार' में दो प्रकार से 'श्री-चक्र' का निर्माण होता है। एक में तो रेखाएँ खुदी होती हैं, जिन्हें पूजन के समय सिन्दूर, कुंकुम या रक्त-चन्दन से भरना होता है और दूसरे में रेखायें उभरी होती हैं। ऊर्ध्व-रेखा वाला भू-प्रस्तार-यन्त्र उत्तम माना गया है।

'अर्ध-मेरु-प्रस्तार' भी दो प्रकार का है। पहले में चतुरस्र से लेकर आधी दूर तक क्रमशः उठे हुए तीन चक्र रहते हैं और रेखाएँ समान तथा उभरी रहती हैं। दूसरे में रेखाएँ समान किन्तु खुदी हुई होती हैं।

'मेरु-प्रस्तार' में भूपुर से लेकर विन्दु तक सभो चक्र क्रमशः इस प्रकार उठे हुए होते हैं कि पूरा यन्त्र मेरु (पर्वत) का रूप ले लेता है, जिसका शिखर विन्दु होता है।

इस प्रकार के निर्मित यन्त्रों के सम्बन्ध में 'हिन्दी तन्त्रसार', पृष्ठ २८४ में लिखा है कि—

स्थण्डिल के ऊपर एक हाथ के बराबर इस यन्त्र को बनावे। अथवा भूमि में यन्त्र बना कर रक्त-वर्ण की मिट्टी से उसे पूर्ण करे।

रत्नादि द्वारा बनवाना हो, तो इच्छानुसार एक-दो-तीन या चार तोले तक रत्न लेकर यन्त्र बनवाया जा सकता है। इससे अधिक परिमाण के रत्न द्वारा यन्त्र न बनवाये।

स्वर्ण, ताम्र और रौप्य को 'त्रि-लौह'—कहते हैं। दस भाग स्वर्ण, बारह भाग ताम्र और सोलह भाग रौप्य को एकत्र कर उसके द्वारा यन्त्र बनावे। उसमें पूजन करने से साधक सौभाग्यशाली होता है और शीघ्र ही अणिमादि अष्ट-सिद्धियों का स्वामी होता है।

प्रवाल-पद्मराग-इन्द्रनील मणि, नीलकान्त मणि, स्फटिक अथवा मरकत मणि में यन्त्र बनवा कर पूजा करने से धन-पुत्र-पत्नी और यश मिलता है। ताम्र के यन्त्र में पूजा करने से कान्ति, सुवर्ण के यन्त्र में शत्रु-नाश, रौप्य के यन्त्र में कल्याण और स्फटिक के यन्त्र में पूजा करने से सभी कार्यों में सफलता प्राप्त होती है।

'श्रीश्रीविद्यार्णव तन्त्र' के अनुसार सीस (रांगा), कांस्य (पीतल), फलक (लकड़ी), पट (वस्त्र), भित्ति (दीवाल) पर 'श्री-चक्र' को नहीं अङ्कित करना चाहिये। कूर्म-पृष्ठ पर अङ्कित यन्त्र भी पूजनीय नहीं है। अङ्कित या उत्कीर्ण 'श्री-चक्र' की रेखाएँ सीधी होनी चाहिये। टेढ़ी (वक्र) रेखाओं के होने से यन्त्र विपरीत फल-दायक होता है।

ताम्रादि पर उत्कीर्ण 'श्री-चक्र' को सुरक्षित रखने के प्रति विशेष ध्यान देना चाहिये अन्यथा हानि होती है। यदि किसी प्रकार उसमें दोष आ जाय, तो प्रायश्चित्त कर उसे विसर्जित कर देना चाहिये। 'हिन्दी-तन्त्रसार', पृष्ठ २८५ पर लिखा है कि—

यदि 'यन्त्र' दग्ध, स्फुटित या चोर के द्वारा अपहृत हो जाय, तो साधक एक दिन उपवास से रह कर देवता के मन्त्र का एक लाख या दस सहस्र जप करे और जप का दशांश होम तथा उसका दशांश तर्पण करे। फिर भक्ति-पूर्वक गुरुदेव को सन्तुष्ट कर ब्राह्मण-भोजन करावे।

'यन्त्र' के लुप्त-चिह्न, स्फुटित या भग्न होने पर 'उस' यन्त्र को गङ्गादि नदियों के जल में, तीर्थ या सागर में विसर्जित कर दे। ऐसा न करने से विविध दुःख होते हैं। सभी यन्त्रों के सम्बन्ध में ये ही नियम हैं।

श्री-चक्र

का

अवतरण

(विश्व-सृष्टि का रहस्य)

विश्व-सृष्टि के सम्बन्ध में प्राचीन और नवीन शोध-साहित्य में नाना प्रकार के विवरण देखने में आते हैं। प्रत्येक वर्णन किसी सिद्धान्त-विशेष के अनुसार होता है। प्रत्येक सिद्धान्त विशिष्ट दृष्टि-कोण-मय सत्य के ऊपर प्रतिष्ठित होता है। यहाँ शाक्त-सम्प्रदाय-रूपी विशिष्ट दृष्टि-कोण से सृष्टि-तत्व के विषय में संक्षेप में कहा जा रहा है।

शाक्त-मत के अनुसार विश्व-सृष्टि और व्यक्ति-गत देह-सृष्टि मूलतः एक ही व्यापार है। शाक्त-दर्शन के अनुसार 'श्री-चक्र' के उदय से जगत् की सृष्टि एवं आत्मा का देह-युक्त होकर प्रकाशित होना एक ही बात है। शाक्त-मत से समग्र जगत् के मूल में जो अखण्ड सत्ता विद्यमान है, वह एकाधार से विश्व का उपादान एवं निमित्त-स्वरूप है। उसका ह्रास या वृद्धि नहीं है। वह अनन्त, अनादि, स्व-प्रकाश और चिदानन्द-स्वरूप है। इस स्थिति को शाक्त शिव और शक्ति की अद्वैतावस्था कहते हैं।

शिव-रूप में उक्त अखण्ड सत्ता उदासीन, निष्क्रिय और निरपेक्ष दृष्टा है। शक्ति-रूप में वही भावी विश्व का उपादान है। शिव और शक्ति अभिन्न होते हुए भी शिव तटस्थ और शक्ति सङ्कोच एवं प्रसार-शील है। प्रकृत (वास्तविक) शिव, जिन्हें किसी भी प्रकार शक्ति नहीं कहा जा सकता, उनके सम्बन्ध में किसी प्रकार की व्याख्या या वर्णन सम्भव नहीं है—**'शक्त्या विना परे शिवे नाम धाम न विद्यते।'**

इस प्रकार जगत् के मूल में शक्ति के ही दो विरुद्ध-रूपों (**शिव-शक्ति**) की क्रीड़ा विद्यमान है। यही दो शक्तियाँ किसी स्थिति में सम-रस, अद्वय-भाव से अविभक्त रूप से विद्यमान हैं। किसी स्थिति में ये दोनों विषम-भाव से परस्पर एक दूसरे के ऊपर क्रिया-शील रहती हैं।

तान्त्रिक-साहित्य के सृष्टि-विज्ञान के वर्णन में शक्तियों के ये दो रूप 'अग्नि' एवं 'सोम' रूप से वर्णित हैं। अग्नि दुःख-प्रद, सोम आनन्द-प्रद है। अग्नि मृत्यु-रूप, काल-रूप। सोम अमृत-रूप। अग्नि अविभक्त वस्तु को विभक्त कर प्रकाश बनाती है। सोम विभक्त वस्तु को अविभक्त-रूप में संहत करता है। अग्नि प्रकाश - स्वरूप, सोम विमर्श-रूप। अग्नि और सोम जब साम्य-रूप में अवस्थित रहते हैं, तब अग्नि की कोई क्रिया प्रकाशमान नहीं हो सकती। सृष्टि और संहार कोई भी क्रिया नहीं होती। यह नित्य स्थिति की अवस्था है। यही नित्य अवस्था—अग्नि और सोम का नित्य सम-रस, अद्वय स्थिति—शाक्त-साहित्य में 'काम' अथवा 'सविता' नाम से प्रसिद्ध है।

'अग्नि' के स्पर्श से 'सोम' विगलित होकर क्षरित होता है। इस अवस्था में 'अग्नि' का स्पर्श रहने पर भी 'सोम' की ही प्रधानता रहती है। इसी 'क्षरण' से सृष्टि का उदय होता है। शाक्त-मत से 'हार्द्ध' कला नाम की चित्-कला का उदय होता है। 'अग्नि' के प्रभाव से 'सोम वाष्प-रूप में परिणत हो पिघल कर अव्यक्त हो जाता है। यही संहार का द्योतक है। इस अवस्था में 'सोम' के रहने पर भी 'अग्नि' की प्रधानता से संहार होता है।

शाक्त-मत से चित्-कला के उदित होने पर सृष्टि-व्यापार में जितने भी स्तर लक्षित होते हैं, उन सबका वर्णन 'श्री-चक्र' के विन्दु→त्रिकोण→अष्ट-कोण→अन्तर्दश-कोण→बाह्य दश-कोण→चतुर्दश कोण→अष्ट-दल→षोडश-दश एवं तीन वृत्त व चतुरस्र द्वारा हो जाता है। चतुरस्र सृष्टि की बाह्य प्राचीर है। यहाँ सृष्टि का अवसान होता है। क्षुद्र सृष्टि और विराट् सृष्टि दोनों का नियम एक ही है। जिस प्रकार की भी सृष्टि हो, उसमें बाहर चतुरस्र और भीतर विन्दु अवश्य ही रहेगा।

दूसरे शब्दों में सृष्टि और संहार-चक्र के मध्य एवं संहार और सृष्टि-चक्र के मध्य में आभास या सापेक्ष-रूप में विन्दु का सन्धान मिलता है। अतएव यह कहना असङ्गत नहीं है कि सृष्टि, स्थिति और संहार निरन्तर चलते रहते हैं, अथवा भीतर प्रवेश करने पर देखा जाता है कि जहाँ सृष्टि का मूल है, वहीं संहार का भी अवसान है। जो एक हैं, वे अपने स्वातन्त्र्य के वल से अपने को नाना रूप में प्रकाशित करते हैं।

'एक' का अवलम्बन कर 'नाना' उद्भूत होते हैं। 'नाना' (अनेक) जब निज के मूल (एक स्वरूप) में प्रत्यावर्तन करते हैं, तब वास्तविक संहार घटित होता है और सृष्टि के आवर्त्त में लौटकर आना नहीं होता। यही काल की क्रीड़ा है। 'श्री-चक्र' का यह सन्देश सदैव स्मरण रखना चाहिये कि सृष्टि के व्यापार के पूर्व विन्दु-रूपी चित्-शक्ति की क्रीड़ा अवस्थित है। चित्-शक्ति निज-स्वरूप अर्थात् आत्मा को भित्ति बनाकर उसी के ऊपर विश्व-रचना करती है।

सृष्टि-मुख में उक्त विन्दु त्रिधा विभक्त होकर विन्दु-त्रय के रूप में आविर्भूत होता है। समष्टि में जहाँ एक विन्दु है, व्यष्टि में वहाँ तीन विन्दु होते हैं। प्रकाशांश और विमर्शांश दोनों मूल-सृष्टि के मूल हैं। प्रकाशांश को 'अम्बिका' एवं विमर्श को 'शान्ता' संज्ञा दी गई है। अम्बिका—वामा, ज्येष्ठा और रौद्री—इन तीन शक्ति-रूपों में अभिव्यक्त होती है। शान्ता—इच्छा, ज्ञान और क्रिया-रूपों में अभिव्यक्त होती है। अम्बिका और शान्ता जहाँ सामरस्य-भावापन्न हैं, उसी का नाम मूल-विन्दु या समष्टि-विन्दु है। इसी प्रकार व्यष्टि-विन्दु को भी समझना चाहिये। इन तीन विन्दुओं में पहला वामा और इच्छा का सामरस्य-रूप, दूसरा ज्येष्ठा और ज्ञान का, तीसरा रौद्री और क्रिया का सामरस्य-रूप है। ये तीनों विन्दु ही 'मूल-त्रिकोण' के तीन विन्दु हैं। जिसे 'मूल - विन्दु' कहा गया है, वह इसी मूल त्रिकोण का मध्य विन्दु है।

अम्बिका के साथ शान्ता का सामरस्य होने से 'परा-वाक्' (मूल-विन्दु : परा सत्ता) की अभिव्यक्ति होती है। वामा और इच्छा का सामरस्य होने से 'पश्यन्ती वाक्' की अभिव्यक्ति होती है। ज्येष्ठा और ज्ञान का सामरस्य होने से 'मध्यमा वाक्' की अभिव्यक्ति होती है और रौद्री एवं क्रिया का सामरस्य होने से 'वैखरी' की अभिव्यक्ति होती है।

मूल-त्रिकोण का मध्य-विन्दु 'परा-मातृका' और तीन दिशाओं के तीन विन्दु 'पश्यन्ती-मध्यमा-वैखरी—मातृका' हैं। त्रिकोण की बायीं रेखा 'पश्यन्ती वाक्' का प्रसार है। ऊर्ध्व रेखा या

सम्मुख की सरल रेखा 'मध्यमा वाक्' का प्रसार है और दक्षिण की प्रत्यावर्तन-मुखी 'वैखरी वाक्' का। यही योनि-स्वरूपा विश्व-मातृका का संक्षिप्त दिग्दर्शन है। शब्द-ब्रह्म के ज्ञाता इसी कीं भावना करते हैं।

शाक्त-भावना के अनुसार सृष्टि का नियम है कि ज्ञान से शब्द का उद्भव होकर, शब्द से अर्थ का आविर्भाव होता है। ज्ञान में जो आत्म-गत रूप में होता है, शब्द में वही आत्मा से अनात्मा-रूप में विच्छुरित होता है। इसके बाद शब्द से अर्थ-स्तर में उपनीत होने पर सृष्टि की क्रिया सम्पन्न होती है। रहस्य-विद् भर्तृहरि कहते हैं कि—'तत्व से ही अर्थ का आविर्भाव होता है।' अनादि अनन्त शब्द ही मूल तत्व है। वही अक्षर-स्वरूप अर्थ-रूप में विवर्तित होता है।

शाक्त-दर्शन में शब्द से अर्थ की स्फूर्ति स्पष्टतः स्वीकार की गई है।साथ ही यह भी अङ्गीकृत हुआ है कि शब्द की स्फूर्ति शब्दातीत चैतन्य से होती है। शब्द अर्थ-रूप में परिणत होता है। अर्थ शब्द का बहिर्विलास है।

दूसरे शब्दों में और अधिक स्पष्टीकरण के लिये हम कह सकते हैं कि—'मूल में महा-शक्ति परम शिव—परम अव्यक्त के साथ एक है। यह 'निष्पन्द-स्थिति' है। इसमें स्वातन्त्र्य-योग से 'स्पन्दन' हो उठता है। यह स्वातन्त्र्य-योग की स्थिति, परम सत्ता के सहित अभिन्न होने के कारण, 'नित्य-योग-स्थिति' है अर्थात् निष्पन्द-स्थिति में 'नित्य-योग' का स्पन्दन निरन्तर होता रहता है। बुद्धि इसकी धारणा नहीं कर सकती। आत्म - स्वानुभव के बीच इसे परिस्फुट रूप से धारण किया जा सकता है क्योंकि प्रमाण के गोचर न होने पर भी यह 'नित्य-प्रकाश' है।

शुद्ध स्पन्दन के साथ ही 'एक' के मध्य, स्वातन्त्र्य-योग के छिन्न न होते हुए, वैचित्र्य का आभास होता है। शिव शक्ति के उन्मुख हुए प्रतीत होते हैं एवं शक्ति बहिर्मुख। यह शक्ति के गर्भ में ही प्रकाशित होता है। बहिर्मुख शक्ति मूल-शक्ति का गर्भाधान है। गर्भ से पृथक् होकर बहिर्मुख शक्ति सृष्टि-रूप ग्रहण करती है।

इस प्रकार 'विन्दु'-रूपी परा-वाक् के गर्भ में है—तत्व, शब्द या अर्थ अर्थात् विश्व। सृष्टि के मूल में वाङ्-मय 'त्रिकोण' है। वाङ्-मय त्रिकोण के मध्य में परा-वाक् रूपी 'विन्दु' है। वाङ्-मय त्रिकोण की तीन रेखायें पश्यन्ती—मध्यमा-वैखरी तीनों वाक्-स्वरूपा हैं। परा-वाक्-रूपो विन्दु में विश्व गर्भस्थ है, वामा में प्रसूत है, ज्येष्ठा में विकसित है और वैखरी में पूर्ण विग्रह-धारी है। वाङ् - मय त्रिकोण की तीन रेखायें पन्द्रह (१५) स्वर-वर्णों द्वारा रचित हैं। वाम - रेखा पहले पाँच स्वरों 'अ आ इ ई उ' से रचित है। ऊर्ध्व-रेखा अगले पाँच स्वरों 'ऊ ए ऐ ओ औ' और दक्षिण-रेखा शेष पाँच स्वरों 'ऋ ॠ ऌ ॡ अं' से रचित है। त्रिकोण का विन्दु आसन-स्वरूप 'अः' सोलहवाँ स्वर-वर्ण है। इस आसन में शिव-शक्ति, परमेश्वर-परमेश्वरी नित्य आसीन हैं।

शिव-शक्ति द्वारा आसीन वैन्दव-चक्र से बाह्य सृष्टि का स्फुरण होता है। नौ त्रिकोणात्मक नव-योनि-चक्र का उद्भव होता है। नव-योनि के नौ अवयव हैं—१ धर्म, २ अधर्म, ३ आत्मा, ४ अन्तरात्मा, ५ परमात्मा, ६ ज्ञानात्मा, ७ प्रमात्मा-जीव, ८ प्रमेय और ९ प्रमा। यह नव-योनि-चक्र भीतर और बाहर चिदानन्द-मय, पूर्णाहन्ता - स्फुरणात्मक आनन्द-मय है। यह देश, काल और आकार द्वारा अपरिच्छिन्न है। वैन्दव-चक्र परा वाङ्मय अभ्यन्तर है। नव - योनि - चक्र (बाह्य सृष्टि) वैखरी-वाङ्मय है।

भावनोपनिषद् के अनुसार आत्म-ध्यान के समय साधक निज-देह को ही 'श्री-चक्र' रूप में भावना करे। इस भावना का विशेष प्रयोजन यही है कि 'देह' अथवा 'विश्व' आत्मा से अभिन्न है,

इसकी अनुभूति हो। भावनावादी कहते हैं कि चन्द्रमा की सुप्रसिद्ध पञ्च-दश कलाएँ शुक्ल-पक्ष की प्रतिपदा से पूर्णिमा तक की पन्द्रह तिथियों की द्योतक हैं। इन सबको कामेश्वरी से अभिन्न समझना होता है। 'सदाख्य' नाम से प्रसिद्ध षोडशी कला से उसे अभिन्न अनुभव करना होता है। अर्थात् काल-चक्र में जो कुछ पतित होता है, 'श्री-चक्र' में वह नित्य विद्यमान, नित्य-वर्ग के साथ अभिन्न है।

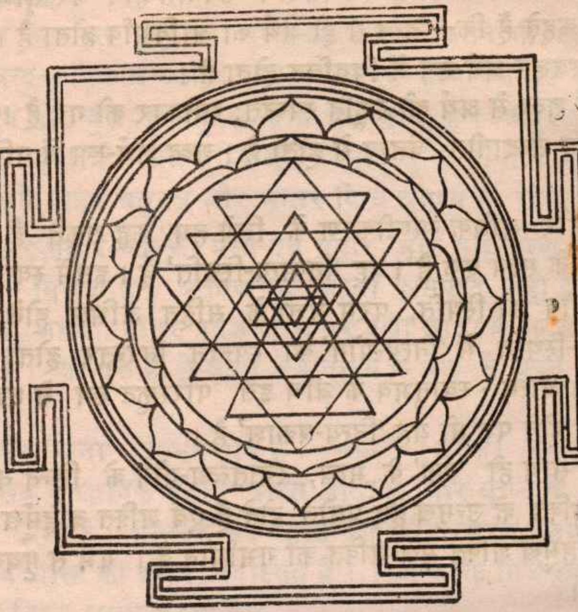

'तिथि-चक्र' अथवा 'काल-चक्र' निरन्तर आवर्तन करता है। 'श्री-चक्र' इसके अभ्यन्तर में नित्य विद्यमान है। यह सकल विषय तान्त्रिक शाक्त-योग के अन्तर्गत है। इस प्रसङ्ग में अधिक लिखना 'बौना होकर चन्द्रमा को स्पर्श करना है।'

—परम पूज्य श्री स्वामी हिमालय अरण्य जी

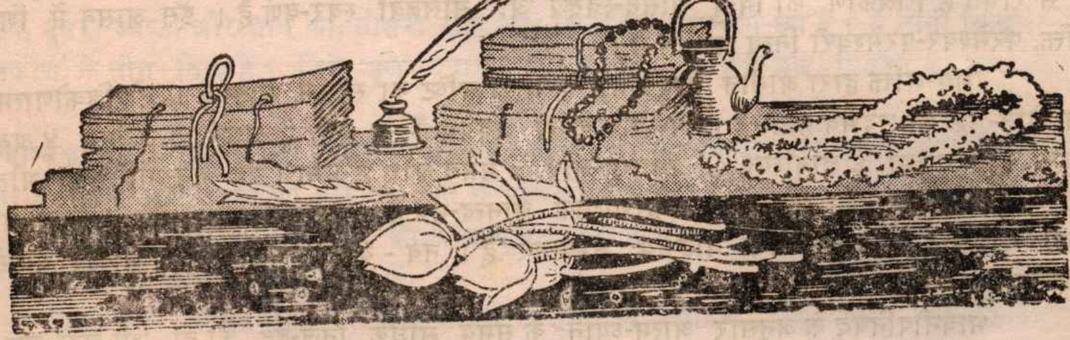

चतुर्भिः श्री-कण्ठैः शिव-युवतिभिः पञ्चभिरपि,
प्रभिन्नाभिः शम्भोर्नवभिरपि मूल - प्रकृतिभिः ।

'श्री-चक्र' में नौ त्रिकोणों में से चार शिवात्मक और पाँच शक्त्यात्मक हैं । ये शम्भु (बिन्दु) से पृथक् हैं । फिर आठ और सोलह दलवाले पद्म हैं, जिनके बाद तीन वृत्त एवं तीन भूपुर हैं । त्रिकोणों की कुल संख्या ४३ है ।

४३ त्रिकोणों में विविध देवताओं की पूजा होतो है ।

२४ पद्म-दलों में विभिन्न शक्तियाँ पूजनोय हैं ।

१५ त्रिवृत्तों में ५ ज्ञानेन्द्रिय + ५ कर्मेन्द्रिय + ५ तन्मात्रायें हैं ।

१९ चतुष्कोणों (भूपुरों) में ५ महा-प्रेत + १० दिक्-पाल + ४ अन्तःकरण हैं ।

कुल १०१ यन्त्र 'श्री-चक्र' में निहित हैं, जो शताक्षरो महा-मन्त्र के १०१ बीजाक्षरों से अधिष्ठित हैं ।

—गुप्तावतार बाबाश्री

त्रयश्चत्वारिंशद्-वसु-दल-कलाब्ज-त्रिवलय—
त्रि-रेखाभिः सार्द्धं तव चरण-कोणाः परिणताः ॥